दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९४ तंत्री-जगजीवन बाउचंद दोशी, सावरकुंडला वर्ष २३ अंक नं० ९

तेरे दोष से तुझे बंधन है,
यह संत की प्रथम शिक्षा है

जड़ कर्म विचारे कौन ? भूल मेरी अधिकाई,
अग्नि सहे घन घात लोह की संगति पाई।

अपना दोष उतना ही कि अन्य को अपना मानना, अपने आधीन रहे, ऐसा मानना और अपने को स्वयं भूल जाना। सुख अंतर में है, वह बाहर शोधने से कभी मिलेगा नहीं। अंतर में (अपनी आत्मा में) सुख है, बाहिर में नहीं है, सत्य कहता हूँ।

अंतर का सुख अंतर की भेदविज्ञान सहित स्वरूपस्थिति में है, वह स्थिति होने के लिये बाह्य पदार्थों संबंधी आश्चर्य (महात्म्य) भूल।

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

जनवरी १९६८] वार्षिक मूल्य ३) (२७३) एक अंक २५ पैसा [पौष सं० २०२४

विषय-सूची

१. आध्यात्मिक पद
२. परलोक ब्रह्मलोक
३. गुरु कैसे हों
४. स्वतंत्रता की घोषणा
५. भजन
६. सम्यक्त्व प्राप्त होते ही अनंत गुणों का भंडार प्रगट हो जाता है
७. तत्त्व चर्चा
८. सच्चा आत्मा कब अनुभव में आता है
९. ज्ञानी का चिंतवन
१०. शुद्धात्मा का अनुभव करनेवाला चमत्कारिक ज्ञान
११. ज्ञान गोष्ठी
१२. निष्कर्मरूप ज्ञानचेतना का परम सुख
१३. विविध वचनामृत
१४. धर्म क्या, कहाँ और कैसे ?
१५. ज्ञान चेतना के द्वारा ज्ञानी की पहिचान होती है
१६. प्रश्नोत्तर मध्यम वर्ग शिक्षण शिविर १९६७ सोनगढ़

नया प्रकाशन

जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला, भाग १

(पाँचवीं आवृत्ति)

जिसमें सर्वज्ञ वीतराग कथित जैन सिद्धांत ज्ञान में तत्त्वज्ञानी की प्राप्ति में प्रवेश करने के लिये अति स्पष्टता से द्रव्य-गुण-पर्यायों का ज्ञान कराया है। गुरुवर्य श्री गोपालदासजी बरैया कृत जैन सिद्धांत प्रवेशिका के दूसरे अध्याय का आधार मुख्यता से लिया गया है। धर्म जिज्ञासुओं में बहुत मांग चालू रही है। अतः यह पाँचवीं बार सेठी ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित हुई है। (चौथी आवृत्ति में तीन हजार पुस्तकें छापी थी) पृष्ठ संख्या १३०, बढ़िया कागज, मूल्य ७५ पैसा थोक मंगाने पर २५ टका कमीशन।

अध्यात्म रस से भरपूर

''आत्म धर्म''

मासिक पत्र के ग्राहक बनिये

एवं अपने मित्रों को बनाइये

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

संपादक : (१) श्री ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन (२) श्री ब्र० हरिलाल जैन

जनवरी : १९६८ ☆ वर्ष २३वाँ, पौष, वीर नि०सं० २४९४ ☆ अंक : ९

आध्यात्मिक पद

[रूढ़ि से पुण्य को धर्म कहा किंतु वास्तव में पुण्य-पाप दोनों आस्रव तत्त्व हैं, बंध के कारण हैं, बंध के कारण को मोक्ष का कारण कहना असद्भूत व्यवहार है।]

कितने हमने पुण्य किये-पर भव का अन्त न आया।
निज स्वरूप पहिचान बिना, यह पुण्य हमें भरमाया॥

अशुभरूप परिणाम न कर तू, शुभ में हो मत लीन,
एक बार निज गुण प्रगटा, जो है तेरे आधीन।
शुभ करने से मोक्ष मिलेगा ऐसा नहीं बताया।
कितने हमने पुण्य किये, पर भव का अन्त न आया॥निज०॥

कितने भव में भटक चुका है, आतमगुण बिन जाने,
आगे भी तो रुलना होगा, आत्मशक्ति बिन माने,
निज पुरुषार्थ करो तुम निज में, मुनिवर ने समझाया।
कितने हमने पुण्य किये-पर भव का अन्त न आया॥निज०॥

तीर्थंकर के समवसरण हम गये हैं कितनी बार,
सच्चे गुरु के वचन सुने पर भव से मिला न पार,
क्या निमित्त? जब उपादान है सुप्त पड़ा अलसाया,
कितने हमने पुण्य किये-पर भव का अन्त न आया॥निज०॥

—भँवरलाल, गोहाटी (आसाम)

परलोक-ब्रह्मलोक

[उसे ज्ञानी अपने अंतरंग में देखता है]

धर्मी की परिणति अंतर में मुड़कर परमात्मतत्त्व में प्रविष्ट हो गई है, उस परिणति में परमात्मा निवास करते हैं; वह परिणति आनंद का अनुभव करती हुई परमात्मा से मिलने जा रही है; परम ब्रह्मस्वरूप आत्मा के रंग से वह परिणति रंगी हुई है। स्वरूप के रंग से रँगी हुई वह परिणति सिद्धपद को साधेगी।

(परमात्मप्रकाश, प्रवचन गाथा ११०-११२)

शरीर तो अजीव है, उससे भिन्न तथा विकारी भावों से भी भिन्न ऐसा जो शुद्ध चैतन्यमय उत्कृष्ट आत्मस्वभाव, जिसके अवलोकन से परम आनंद का अनुभव हो – ऐसे परमतत्त्व को ज्ञानी निर्विकल्प स्वसंवेदन से अपने में देखता है। 'पर' अर्थात् उत्कृष्ट ऐसा जो शुद्ध आत्मा, उसका जो अपने अंतर में अवलोकन करता है-देखता है-जानता है-अनुभवता है, वह जीव शीघ्र ही परलोक में अर्थात् परमात्मतत्त्व में प्रवेश करता है। ऐसा जो शुद्ध ज्ञानमय ब्रह्मस्वरूप आत्मा, वही सच्च ब्रह्मलोक है, वही जगत में सर्वोत्कृष्ट होने से परलोक है। स्वयं कल्याणरूप होने से वह स्वयं शिव है, और अपने ज्ञान-आनंद आदि अनंत गुण-पर्यायों में स्वयं ही सर्वव्यापक होने से वह विष्णु है। प्रत्येक आत्मा निश्चय से ऐसा है। सिद्ध भगवान लोकाग्र में व्यक्तरूप से ऐसे ही परमात्मा हैं, और प्रत्येक आत्मा शक्तियप से ऐसा ही परमब्रह्म परमात्मा है। अंतर्मुख उपयोग द्वारा जो ऐसे आत्मा का अवलोकन करता है, वही 'पर' ऐसे उत्कृष्ट आत्मा को देखता है, और सिद्धपदरूप परलोक को वह प्राप्त करता है।

तुझे परलोक को प्राप्त करना है ? अर्थात् उत्कृष्ट ऐसे सिद्धपद को पाना है ?-तो पर ऐसे सर्वोत्कृष्ट निजपद का अपने में अवलोकन कर। चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि जीव अंतर्दृष्टि द्वारा निज में ही परमात्मतत्त्व को देखता है। धर्मात्मा के अंतरंग में ऐसा उत्कृष्ट आत्मा निवास करता है।

जगत में अनंत आत्मा अपनी परमेश्वरता से परिपूर्ण हैं। अन्य कुछ भी उससे उत्कृष्ट

नहीं है। आत्मा के स्वभाव के अतिरिक्त अन्य कहीं भी राग में-विकार में-संयोग में जिसे महत्ता भासित होती है, वह पर-लोक को नहीं देखता, और जो पर-लोक को नहीं देखता, वह सिद्धपद को प्राप्त नहीं करता। भाई, उत्कृष्ट तो तेरा आत्मा है। विकल्प उठे, वह आत्मा के स्वभाव की प्राप्ति के लिये किंचित् भी सरल बना है-ऐसा नहीं होता। विकल्प में-राग में किंचित्मात्र भी उत्तमता नहीं है, सार नहीं है। सार तो परमब्रह्म आत्मतत्त्व में ही है-ऐसा निश्चित करके उसमें अपनी मति को लगा तो उस ओर तेरी गति हो अर्थात् परिणति की गति स्वभावोन्मुख हो जाये। अज्ञानी की परिणति विकार की ओर झुकती है, क्योंकि वह शुद्धात्मा का अवलोकन नहीं करता; ज्ञानी की परिणति शुद्धात्मा के अवलोकन द्वारा विकार से विमुख होकर, चिदानंदस्वभाव की ओर झुकती है और निज परम-उत्कृष्ट पद को प्राप्त करती है। इसलिये स्वसंवेदन ज्ञान से अपने ऐसे आत्मा को तू जान-ऐसा उपदेश है।

अपने अंतर में विद्यमान उत्कृष्ट परमतत्त्वरूप पर-लोक को जो नहीं देखता और जगत के बाह्य पदार्थों को देखने जाता है—दौड़-दौड़कर बाह्य ज्ञेयों की ओर झुकता है, उसे अंतर के परमपद की प्राप्ति कैसे हो? परमधाम ऐसा सिद्धपद उसे कहाँ से दिखे? परमधाम ऐसा सिद्धपद तो अपने आत्मा में ही है, सिद्धभगवान अनंतगुणधाम ऐसे निजपद में ही स्थिर हैं।

ऐसा परमचैतन्यतत्त्व संत-मुनियों-गणधरों तथा इन्द्र-चक्रवर्ती आदि महापुरुषों के अंतरंग में बसा हुआ है। महापुरुषों ने अर्थात् धर्मी जीवों ने तो अपने अंतर में इस परमतत्त्व को ही बसाया है। 'पर' अर्थात् उत्कृष्ट वीतराग चिदानंद-एकस्वभावी आत्मा, उसका लोकन-अवलोकन-अनुभवन, उसका नाम 'पर-लोक' है। धर्मात्मा जीव अंतर में ऐसी आत्मा का अवलोकन करता है।

धर्मात्मा की ज्ञानपरिणति में परमात्मा विराजते हैं। धर्मात्मा की ज्ञानपरिणति में राग नहीं विराजता, राग तो ज्ञानपरिणति से बाह्य में वर्तता है, ज्ञानपरिणति में तो शुद्ध परमात्मा ही विराजते हैं 'जहाँ मैं रहूँ, वहाँ तू नहिं' अर्थात् जहाँ मेरे ज्ञान में परमात्मा विराजे, वहाँ अब परभाव के लिये स्थान नहीं। परमात्मतत्त्व और राग, इन दोनों की रुचि एक साथ नहीं रह सकती। जो परिणति अंतरोन्मुख होकर परमात्मतत्त्व में प्रविष्ट हुई, उस परिणति में परमात्मा विराजते हैं; वह परिणति आनंद का अनुभव करती हुई परमात्मा से मिलने चली है।

अरे जीव! तू अपनी परिणति में परमात्मा को विराजमान कर, कैसे?—निर्विकल्प

स्वसंवेदन परमात्मतत्त्व को प्रतीति में ले। अपने अनुभव में जहाँ परमात्मतत्त्व प्राप्त किया, वहाँ अब दूसरों से क्या लेना रहा? और दूसरों को क्या दिखाना है? मुझमें कुछ विशेषता है—ऐसा दुनिया जाने तो ठीक—ऐसी बुद्धि ज्ञानी के नहीं होती। अपना पद अपने में ही देखते हैं, और उसके अवलोकन में अपना कार्य साध ही रहे हैं, वहाँ लोक में प्रसिद्धि का क्या प्रयोजन है? धर्मात्मा जानता है कि मेरी परिणति अंतर में मेरा कार्य कर ही रही है, तब फिर लोग जानें या न जानें, उससे क्या प्रयोजन? धर्मात्मा अपना बड़प्पन दूसरों से नहीं मानता। अरे, चक्रवर्तीपद और इन्द्रपद से कहीं आत्मा की महानता नहीं है, आत्मा स्वयं ही सबसे महान परमतत्त्व है, ऐसे उत्कृष्ट पद को धर्मात्मा अपने में ही देखता है। चैतन्य का प्रवाह अपने में ही बहता है, आनंद का समुद्र अपने में ही उछल रहा है, ऐसे उत्तम स्वतत्त्व को ज्ञानी अपने भीतर ही देखता है, इसलिये वह ज्ञानी स्वयं 'पर-लोक' है। परमतत्त्व तो प्रत्येक आत्मा में है, परंतु उसका अवलोकन करे, वह आत्मा 'परलोक' है। वही 'ब्रह्म-लोक' है। ब्रह्मलोक कहाँ है? तेरे आत्मा में ही तेरा ब्रह्मलोक निवास करता है। राग से जिसकी प्राप्ति न हो, राग से जो नहीं दिखता, रागरहित अंतर्मुख ज्ञान से ही जिसकी प्राप्ति होती है, ऐसा ब्रह्मस्वरूप परमतत्त्व तू है। आत्मा रागस्वरूप नहीं है कि राग से उसकी प्राप्ति हो; आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, ज्ञान से ही उसकी प्राप्ति होती है। ऐसे ज्ञान से तू अपने आत्मा का अवलोकन कर कि जिस अवलोकन से परम आनंदसहित परमसिद्धपद की तुझे प्राप्ति हो।

परलोक अर्थात् उत्कृष्टजन; उत्कृष्ट कौन? कि उत्तम ऐसा जो आत्मस्वभाव, उसका जो अवलोकन करता है, वह जीव पर-लोक है, पर अर्थात् उत्तम, लोक अर्थात् पुरुष। परम आत्मस्वरूप को निर्विकल्प समाधि में जो देखता है, वह स्वयं ही परलोक है। अथवा, जिसके उत्कृष्ट केवलज्ञान में समस्त पदार्थ दिखते हैं-प्रतिभासित होते हैं, वह परलोक है, अर्थात् केवली परमात्मा ही परलोक है। और रसर्वज्ञ जैसा अपना आत्मस्वभाव है, उसका अवलोकन करके उसे उपादेय करना, वह तात्पर्य है। ऐसे उपाय से ही परम, ब्रह्म की प्राप्ति होती है। आत्मा का स्वभाव परमब्रह्म है अथवा सिद्धदशा और केवलज्ञानदशा, वह परमब्रह्म है।

जिसकी बुद्धि स्वसंवेदन से निजस्वरूप में स्थिर हुई है, वह ज्ञानी निश्चय से उत्तम जन है। चैतन्य के ब्रह्मानंद के स्वाद से विषयकषायों की रुचि उसे छूट गई है; वह महा-जन है, बड़ा आदमी है अथवा महापुरुष है। जगत में बड़ा कौन? कि महान ऐसे आत्मस्वभाव को जो

अनुभव में ले, वही वास्तव में बड़ा है; पैसो से बड़ा या पढ़ाई से बड़ा अथवा पद से जो बड़ा हो, उसे तो सचमुच बड़ा कहते ही नहीं।

उत्तम चिदानंदस्वभाव में जिसने मति लगाई है, उसकी परिणति की गति भी उसी तरफ जायेगी, क्योंकि 'यत्र मतिः तत्र गतिः' यह नियम है। उत्तम स्वभाव में जिसने मति को लगाया, उसकी गति अर्थात् परिणति भी उत्तम होगी, वह सिद्धगति प्राप्त करेगा। जिसने शुद्धात्मा का तिरस्कार करके विकार में और विषयकषाय में अपनी मति को लगाया, वह संसार में चाहे जितना बड़ा कहलाता हो तो भी उसकी गति तो संसार परिभ्रमण की ओर ही है, उसे बड़ा नहीं कहते। बड़ा तो उसी को कहा जाता है कि जिसने शुद्ध आत्मा में मति को लगाया और परम सिद्धगति की ओर गमन किया है। परम स्वरूप का अवलोकन करके उसमें जिसने मति को लगाया है, वह जीव परलोक है–वही परब्रह्म है, परमब्रह्मस्वरूप आत्मा के रंग से वह रँग गया है। स्वरूप से रंग से रंगी हुई उसकी वीतराग परिणति सिद्धगति को प्राप्त करेगी। धर्मात्मा की मति का प्रवाह अंतर–स्वरूप में जाता है, अज्ञानी की मति का प्रवाह विकार की ओर जाता है।

स्वरूप के रंग में रंगी हुई धर्मात्मा की परिणति का प्रवाह परमात्मपद में पहुँचेगा। अज्ञानी की परिणति का प्रवाह विकार की ओर मुड़ा है, वह संसार की चारों गतियों को उत्पन्न करेगा।

अरे जीव! राग की रुचि ने तेरे स्वभाव के प्रेम को लूट लिया है; अपनी मति को विकार में लगाने से तेरे निश्चयरत्नत्रय लूटे जाते हैं। और शुद्धात्मस्वरूप में अपनी मति को लगाने से शुद्ध रत्नत्रय का वैभव प्राप्त होता है। इसलिये अपनी मति को शुद्धात्मा में लगा। इसके अतिरिक्त अन्य कहीं भी अपनी मति को न लगा।

जिस मति ने आत्मा का मूल्यांकन किया, उस मति को शुद्धात्मा की प्राप्ति होगी। जिस मति ने विकार का मूल्य बढ़ाया, उस मति को विकार की ही प्राप्ति होगी। अरे जीव! तुझे अपनी आत्मा का मूल्यांकन करना नहीं आया और विकार का मूल्य बढ़ाकर तू अपनी आत्मा को भूला! जिसे जिसका अधिक मूल्य लगता है, उसकी मति भी उसी में लगती है। शुद्ध स्वभाव और पर्याय में विकार, यह दोनों विद्यमान होने पर भी धर्मात्मा ने अपनी मति में शुद्ध स्वभाव का मूल्यांकन किया है, अर्थात् उसकी परिणति उसी में लगती है, और वह सिद्धपद को साधता है, और वह अनन्त सिद्ध–भगवंतों के समीप जाकर रहता है।

अनंत सिद्धभगवान एक ही जगह अनंत आनंदसहित साथ में विराजते हैं और उससे विरुद्ध स्वरूप की विराधना करनेवाले निगोदिया जीव एक देह में एक साथ अनंत, अनंत दुःख सहित रहते हैं। इसप्रकार जानकर हे जीव! तू अपनी मति को शुद्ध आत्मा में लगा; उसमें मति को लगान से ही तू अतीन्द्रिय आनंद से तृप्त-तृप्त हो जायेगा।

गुरु कैसे हों ?

जो निस्पृह और पापरहित हैं, और जो हेय-आदेय समझनेवाली विशाल बुद्धि के धारक हैं, ऐसे गुरुओं के विचार चतुर उपदेशों से बुधजन धर्म को—आत्महितकर धर्म को ग्रहण करते हैं। सत्यस्वरूप जाननेवाले गुरुओं का दुर्लभ उपदेश सुननेवाले संसारी जीव मिथ्याज्ञानरूपी सन्निपात ज्वर की पीड़ा से मुक्त हो जाते हैं। संसार में डूबते हुए जो भव्य जीव जिनके भव्यचित्त-रत्नत्रय की प्राप्तियोग्य मन के धारक हैं, उन्हें गुरु नौका के समान संसार-तारक होते हैं।

(सिद्धांतसार संग्रह ग्रंथ से)

स्वतंत्रता की घोषणा

(चार बोलों से स्वतंत्रता की घोषणा करनेवाला विशेष प्रवचन)

[लेखांक - २]

समयसार कलश २११ पर पूज्य गुरुदेव के इस विशेष प्रवचन का पहला भाग आत्मधर्म अंक २७१ में आ चुका है। उसमें वस्तुस्वरूप से कर्ता-कर्मपना एक ही वस्तु में होता है-ऐसी स्वतंत्रता की घोषणा करते हुए ऐसा बतलाया है कि—(१) वस्तु के जो परिणाम हैं, वही वास्तव में कम हैं और (२) वे परिणाम वस्तु के ही हैं—अन्य के नहीं। तत्पश्चात् दूसरे दो बोल यहाँ दिये जा रहे हैं। वस्तुस्वरूप की ऐसी स्वतन्त्रता समझने पर भेदज्ञान होकर स्वद्रव्याश्रित मोक्षमार्ग प्रगट होता है।

(३) कर्ता के बिना, कर्म नहीं होता

कर्ता अर्थात् परिणमित होनेवाली वस्तु और कर्म अर्थात् उसकी अवस्थारूप कार्य; कर्ता के बिना कर्म नहीं होता अर्थात् वस्तु के बिना पर्याय नहीं होती; सर्वथा शून्य में से कोई कार्य उत्पन्न हो जाये—ऐसा नहीं होता।

देखो, यह वस्तुविज्ञान के महान सिद्धान्त! इस २११वें कलश में चार बोलों द्वारा चारों पक्षों से स्वतंत्रता सिद्ध की है। विदेशों में अज्ञान की पढ़ाई के पीछे हैरान होते हैं, उसकी अपेक्षा सर्वज्ञदेव कथित इस परमसत्य वीतरागी-विज्ञान को समझे तो अपूर्व कल्याण हो।

(१) परिणाम सो कर्म; यह एक बात।

(२) वह परिणाम किसका ?—कि परिणामी वस्तु का परिणाम है, दूसरे का नहीं। यह दूसरा बोल; इसका बहुत विस्तार किया।

अब, इस तीसरे बोल में कहते हैं कि—परिणामी के बिना परिणाम नहीं होता। परिणामी वस्तु से भिन्न अन्यत्र कहीं परिणाम हो—ऐसा नहीं होता। परिणामी वस्तु में ही उसके परिणाम होते हैं; इसलिये परिणामी वस्तु, वह कर्ता है, उसके बिना कार्य नहीं होता। देखो,

इसमें निमित्त के बिना कार्य नहीं होता—ऐसा नहीं कहा। निमित्त, निमित्त में रहता है, वह कहीं इस कार्य में नहीं आ जाता; इसलिये निमित्त के बिना कार्य होता है परंतु परिणामी के बिना कार्य नहीं होता। निमित्त भले हो, परंतु उसका अस्तित्व तो निमित्त में है, इसमें उसका अस्तित्व नहीं है। परिणामी वस्तु की सत्ता में ही उसका कार्य होता है। आत्मा के बिना सम्यक्त्वादि परिणाम नहीं होते। अपने समस्त परिणामों का कार्य आत्मा है, उसके बिना कर्म नहीं होता। 'कर्म कर्तृशून्यं न भवति'—प्रत्येक पदार्थ की अवस्था उस-उस पदार्थ के बिना नहीं होती। सोना नहीं है और गहने बन गये, वस्तु नहीं है और अवस्था हो गई—ऐसा नहीं हो सकता। अवस्था है, वह त्रैकालिक वस्तु को प्रगट करती है—प्रसिद्ध करती है कि यह अवस्था इस वस्तु की है।

जैसे कि—जड़ कर्मरूप पुद्गल होते हैं, वे कर्मपरिणाम कर्ता के बिना नहीं होते। अब उनका कर्ता कौन?—तो कहते हैं कि—उस पुद्गलकर्मरूप परिणमित होनेवाले रजकण ही कर्ता हैं; आत्मा उनका कर्ता नहीं है।

— आत्मा कर्ता होकर जड़कर्म का बंध करे—ऐसा वस्तुस्वरूप में नहीं है।

— जड़कर्म आत्मा को विकार कराये—ऐसा वस्तुस्वरूप में नहीं है।

— मंदकषाय के परिणाम सम्यक्त्व का आधार हों—ऐसा वस्तुस्वरूप में नहीं है।

— शुभराग से क्षायिक सम्यक्त्व हो—ऐसा वस्तुस्वरूप में नहीं है।

तथापि अज्ञानी ऐसा मानता है—यह सब तो विपरीत है-अन्याय है। भाई, तेरे यह अन्याय वस्तुस्वरूप को सहन नहीं होंगे। वस्तुस्वरूप को विपरीत मानने से तेरे आत्मा को बहुत दुःख होगा—ऐसी करुणा संतों को आती है। संत नहीं चाहते कि कोई जीव दुःखी हो। जगत के सारे जीव सत्यस्वरूप को समझें और दुःख से छूटकर सुख प्राप्त करें—ऐसी उनकी भावना है।

भाई! तेरे सम्यग्दर्शन का आधार तेरा आत्मद्रव्य है। शुभराग कहीं उसका आधार नहीं है। मंदराग, वह कर्ता और सम्यग्दर्शन उसका कार्य—ऐसा त्रिकाल में नहीं है। वस्तु का जो स्वरूप है, वह तीन काल में आगे-पीछे नहीं हो सकता। कोई जीव, अज्ञान से उसे विपरीत माने, उससे कहीं सत्य बदल नहीं जाता। कोई समझे या न समझे, सत्य तो सदा सत्यरूप ही रहेगा, वह कभी बदलेगा नहीं। जो उसे यथावत् समझेंगे, वे अपना कल्याण कर लेंगे और जो नहीं समझेंगे, उनकी तो बात ही क्या? वे तो संसार में भटक ही रहे हैं।

'देखो, वाणी सुनी, इसलिये ज्ञान होता है न! परन्तु सोनगढ़वाले इंकार करते हैं कि वाणी के आधार से ज्ञान नहीं होता'—ऐसा कहकर कुछ लोग कटाक्ष करते हैं, लेकिन भाई! यह तो वस्तुस्वरूप है; त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ परमात्मा भी दिव्यध्वनि में यही कहते हैं कि—ज्ञान, आत्मा के आश्रय से होता है, ज्ञान आत्मा का कार्य है, दिव्यध्वनि के परमाणु का कार्य नहीं है। ज्ञान कार्य का कर्ता आत्मा है, न कि वाणी के रजकण। जिस पदार्थ के जिस गुण का जो वर्तमान हो, वह अन्य पदार्थ के या अन्य गुण के आश्रय से नहीं होता। उसका कर्ता कौन ?—कि वस्तु स्वयं। कर्ता और उसका कार्य दोनों एक ही वस्तु में होने का नियम है, वे भिन्न वस्तु में नहीं होते।

यह लकड़ी ऊपर उठी, सो कार्य है; यह किसका कार्य है ?—कि कर्ता का कार्य; कर्ता के बिना कार्य नहीं होता। कर्ता कौन है ?—कि लकड़ी के रजकण ही लकड़ी की इस अवस्था के कर्ता हैं; यह द्रव्य, अँगुली, यह इच्छा उसके कर्ता नहीं हैं।

अब अंतर का सूक्ष्म दृष्टांत लें तो—किसी आत्मा में इच्छा और सम्यग्ज्ञान दोनों परिणाम वर्तते हैं; वहाँ इच्छा के आधार से सम्यग्ज्ञान नहीं है। इच्छा सम्यग्ज्ञान का कर्ता नहीं है। आत्मा ही कर्ता होकर उस कार्य को करता है। **कर्ता के बिना कर्म नहीं है और दूसरा कोई कर्ता नहीं है;** इसलिये जीव कर्ता द्वारा ज्ञानकार्य होता है। इसप्रकार समस्त पदार्थों के सर्व कार्यों में उस-उस पदार्थ का ही कर्तापना है—ऐसा समझना चाहिये।

देखो भाई, यह तो सर्वज्ञ भगवान के घर की बात है, इसे सुनकर संतुष्ट होना चाहिये। अहा! संतों ने वस्तुस्वरूप समझाकर मार्ग स्पष्ट कर दिया है; संतों ने सारा मार्ग सरल और सुगम बना दिया है, उसमें बीच में कहीं अटकना पड़े—ऐसा नहीं है। पर से भिन्न ऐसा स्पष्ट वस्तुस्वरूप समझे तो मोक्ष हो जाये। बाहर से तथा अंतर से ऐसा भेदज्ञान समझने पर, मोक्ष हथेली में आ जाता है। मैं तो पर से पृथक् हूँ और मुझमें एक गुण का कार्य दूसरे गुण से नहीं है—यह महान सिद्धांत समझने पर स्वाश्रयभाव से अपूर्व कल्याण प्रगट होता है।

कर्म अपने कर्ता के बिना नहीं होता—यह बात तीसरे बोल में कही और चौथे बोल में **कर्ता की (वस्तु की) स्थिति एकरूप अर्थात् सदा एक समान नहीं होती,** परंतु वह नये-नये परिणामोंरूप से बदलता रहता है—यह बात कहेंगे। हर बार प्रवचन में इस चौथे बोल का विशेष विस्तार होता है; इस बार दूसरे बोल का विशेष विस्तार आया।

कर्ता के बिना कार्य नहीं होता, यह सिद्धांत है; वहाँ कोई कहे कि यह जगत्, सो कार्य

है और ईश्वर उसका कर्ता है, तो यह बात वस्तुस्वरूप की नहीं है। प्रत्येक वस्तु स्वयं ही अपनी पर्याय का ईश्वर है और वही कर्ता है; उससे भिन्न दूसरा कोई या अन्य कोई पदार्थ कर्ता नहीं है। पर्याय, सो कार्य और पदार्थ उसका कर्ता।

कर्ता के बिना कार्य नहीं और दूसरा कोई कर्ता नहीं।

कोई भी अवस्था हो—शुद्ध अवस्था, विकारी अवस्था या जड़ अवस्था—उसका कर्ता न हो—ऐसा नहीं होता, तथा दूसरा कोई कर्ता हो—ऐसा भी नहीं होता।

— तो क्या भगवान उसके कर्ता हैं ?

— हाँ, भगवान कर्ता अवश्य हैं, परंतु कौन भगवान ? अन्य कोई भगवान नहीं, परंतु यह आत्मा स्वयं अपना भगवान है, वही कर्ता होकर अपने शुद्ध-अशुद्ध परिणामों को करता है। जड़ के परिणाम को जड़पदार्थ करता है; वह अपना भगवान है। प्रत्येक वस्तु अपनी-अपनी अवस्था की रचयिता ईश्वर है। स्व का स्वामी है, पर का स्वामी मानना मिथ्यात्व है।

संयोग के बिना अवस्था नहीं होती—ऐसा नहीं है, परंतु वस्तु परिणमित हुए बिना अवस्था नहीं होती—ऐसा सिद्धांत है। अपनी पर्याय के कर्तृत्व का अधिकार वस्तु का अपना है, उसमें पर का अधिकार नहीं है।

इच्छारूपी कार्य हुआ, उसका कर्ता आत्मद्रव्य है।

उस समय उसका ज्ञान हुआ, उस ज्ञान का कर्ता आत्मद्रव्य है।

पूर्व पर्याय में तीव्र राग था, इसलिये वर्तमान में राग हुआ—इसप्रकार पूर्व पर्याय में इस पर्याय का कर्तापना नहीं है। वर्तमान में आत्मा वैसे भावरूप परिणमित होकर स्वयं कर्ता हुआ है। इसीप्रकार ज्ञानपरिणाम, श्रद्धापरिणाम, आनंदपरिणाम—उन सबका कर्ता आत्मा है। पर कर्ता नहीं, पूर्व के परिणाम भी कर्ता नहीं तथा वर्तमान में उसके साथ वर्तते हुए अन्य परिणाम भी कर्ता नहीं हैं—आत्मद्रव्य स्वयं कर्ता है। शास्त्र में पूर्व पर्याय को कभी-कभी उपादान कहते हैं, वह तो पूर्व-पश्चात् की संधि बतलाने के लिये कहा है; परंतु पर्याय का कर्ता तो उससमय वर्तता हुआ द्रव्य है, वही परिणामी होकर कार्यरूप परिणमित हुआ है। जिस समय सम्यग्दर्शन पर्याय हुई, उस समय उसका कर्ता आत्मा ही है; पूर्व की इच्छा, वीतराग की वाणी या शास्त्र—वे कोई वास्तव में इस सम्यग्दर्शन के कर्ता नहीं हैं।

उसीप्रकार ज्ञान कार्य का कर्ता भी आत्मा ही है; इच्छा का ज्ञान हुआ, वहाँ वह ज्ञान

कहीं इच्छा का कार्य नहीं है और इच्छा वह ज्ञान का कार्य नहीं है। दोनों परिणाम एक ही वस्तु के होने पर भी उनमें कर्ता-कर्मपना नहीं है; कर्ता तो परिणामी वस्तु है।

पुद्गल में खट्टी-खारी अवस्था थी और ज्ञान ने तदनुसार जाना; वहाँ खट्टे-खारे तो पुद्गल के परिणाम हैं और पुद्गल उनका कर्ता है; तत्संबंधी जो ज्ञान हुआ, उसका कर्ता आत्मा है, उस ज्ञान का कर्ता वह खट्टी-खारी अवस्था नहीं है। कितनी स्वतंत्रता!! उसीप्रकार शरीर में रोगादि कार्य हो, उसके कर्ता वे पुद्गल हैं, आत्मा नहीं; और उस शरीर की अवस्था का जो ज्ञान हुआ, उसका कर्ता आत्मा है। आत्मा कर्ता होकर ज्ञानपरिणाम को करता है परंतु शरीर की अवस्था को वह नहीं करता।

यह तो परमेश्वर होने के लिये परमेश्वर के घर की बात है। परमेश्वर सर्वज्ञदेव कथित यह वस्तुस्वरूप है।

जगत में चेतन या जड़ अनंत पदार्थ अनंतरूप से नित्य रहकर अपने-अपने वर्तमान कार्य को करते हैं, प्रत्येक परमाणु में स्पर्श-रंग आदि अनंत गुण, स्पर्श की चिकनी आदि अवस्था, रंग की काली आदि अवस्था, उस-उस अवस्था का कर्ता परमाणु द्रव्य है; चिकनी अवस्था, वह काली अवस्था की कर्ता नहीं है।

इसप्रकार आत्मा में—प्रत्येक आत्मा में अनंत गुण हैं; ज्ञान में केवलज्ञानपर्यायरूप कार्य हुआ, आनंद प्रगट हुआ, उसका कर्ता, आत्मा स्वयं है। मनुष्य शरीर अथवा स्वस्थ शरीर के कारण वह कार्य हुआ - ऐसा नहीं है; पूर्व की मोक्षमार्ग पर्याय के आधार से वह कार्य हुआ—ऐसा भी नहीं है; ज्ञान और आनंद के परिणाम भी एक-दूसरे के आश्रित नहीं हैं, द्रव्य ही परिणमित होकर उस कार्य का कर्ता हुआ है। भगवान आत्मा स्वयं ही अपने केवलज्ञानादि कार्य का कर्ता है; अन्य कोई नहीं है।—यह तीसरा बोल हुआ।

(४) वस्तु की स्थिति सदा एकरूप (कूटस्थ) नहीं रहती।

सर्वज्ञदेव द्वारा देखा हुआ वस्तु का स्वरूप ऐसा है कि—वह नित्य अवस्थित रहकर प्रतिक्षण नवीन अवस्थारूप परिणमित होता रहता है। पर्याय बदले बिना ज्यों का त्यों कूटस्थ ही रहे—ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। वस्तु द्रव्य-पर्यायस्वरूप है; इसलिये उसमें सर्वथा अकेला नित्यपना नहीं है, पर्याय से परिवर्तनपना भी है। वस्तु स्वयं ही अपनी पर्यायरूप से पलटती है, कोई दूसरा उसे परिवर्तित करे—ऐसा नहीं है। नयी-नयी पर्यायरूप होना, वह वस्तु

का अपना स्वभाव है, तो कोई उसका क्या करेगा? इन संयोगों से कारण यह पर्याय हुई—इसप्रकार संयोग के कारण जो पर्याय मानता है, उसने वस्तु के परिणमन स्वभाव को नहीं जाना है, दो द्रव्यों को एक माना है। भाई, तू संयोग से न देख, वस्तुत्वभाव को देख। वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है कि वह नित्य एकरूप न रहे। द्रव्यरूप से एकरूप रहे परंतु पर्यायरूप से एकरूप न रहे, पलटता ही रहे—ऐसा वस्तुस्वरूप है।

इन चार बोलों से ऐसा समझाया कि वस्तु स्वयं ही अपने परिणामरूप कार्य की कर्ता है—यह निश्चित सिद्धांत है।

इस पुस्तक का पृष्ठ पहले ऐसा था और फिर पलट गया; वह हाथ लगने से पलटा हो—ऐसा नहीं है; परंतु उन पृष्ठों के रजकणों में ही ऐसा स्वभाव है कि सदा एकरूप उनकी स्थिति न रहे; उनकी अवस्था बदलती रहती है; इसलिये वे स्वयं पहली अवस्था छोड़कर दूसरी अवस्थारूप हुए हैं, दूसरे के कारण नहीं। वस्तु में भिन्न-भिन्न अवस्था होती ही रहती है; वहाँ संयोग के कारण वह भिन्न अवस्था हुई—ऐसा अज्ञानी का भ्रम है, क्योंकि वह संयोग को ही देखता है परंतु वस्तु के स्वभाव को नहीं देखता। वस्तु स्वयं परिणमनस्वभावी है, इसलिये वह एक ही पर्यायरूप नहीं रहती—ऐसे स्वभाव को जाने तो किसी संयोग से अपने में या अपने से पर में परिवर्तन होने की बुद्धि छूट जाये और स्वद्रव्य की ओर देखना रहे, इसलिये मोक्षमार्ग प्रगट हो।

पानी पहले ठंडा था और चूल्हे पर आने के बाद गर्म हुआ, वहाँ उन रजकणों का ही ऐसा स्वभाव है कि उनकी सदा एक अवस्थारूप स्थिति न रहे; इसलिये वे अपने स्वभाव से ही ठंडी अवस्था को छोड़कर गर्म अवस्थारूप परिणमित हुए हैं—इसप्रकार स्वभाव को न देखकर अज्ञानी संयोग को देखता है कि—अग्नि के आने से पानी गर्म हुआ। यहाँ आचार्यदेव ने चार बोलों द्वारा स्वतंत्र वस्तुस्वरूप समझाया है; उसे समझ ले तो कहीं भ्रम न रहे।

एक समय में तीन काल-तीन लोक को जाननेवाले सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि में आया हुआ यह तत्त्व है और संतों ने इसे प्रगट किया है।

बर्फ के संयोग से पानी ठंडा हुआ और अग्नि के संयोग से गर्म हुआ—ऐसा अज्ञानी देखता है, परंतु पानी के रजकणों में ही ठंडा-गर्म अवस्थारूप परिणमित होने का स्वभाव है, उसे अज्ञानी नहीं देखता। भाई! वस्तु का स्वरूप ऐसा ही है कि अवस्था की स्थिति एकरूप न

रहे। वस्तु कूटस्थ नहीं है परंतु बहते हुए पानी की भाँति द्रवित होती है—पर्याय को प्रवाहित करती है; उस पर्याय का प्रवाह वस्तु में से आता है; संयोग में से नहीं आता। भिन्न प्रकार के संयोग के कारण अवस्था की भिन्नता हुई, अथवा संयोग बदले, इसलिये अवस्था बदल गई—ऐसा भ्रम अज्ञानी को होता है, परंतु वस्तुस्वरूप ऐसा नहीं है। यहाँ चार बोलों द्वारा वस्तु का स्वरूप एकदम स्पष्ट किया है।

१— परिणाम ही कर्म है।

२— परिणामी वस्तु के ही परिणाम हैं, अन्य के नहीं।

३— वह परिणामरूपी कर्म, कर्ता के बिना नहीं होता।

४— वस्तु की स्थिति एकरूप नहीं रहती।

—इसलिये वस्तु स्वयं ही अपने परिणामरूप कर्म की कर्ता है—यह सिद्धांत है।

इन चारों बोलों में तो बहुत रहस्य भर दिया है। उसका निर्णय करने से भेदज्ञान तथा द्रव्यसन्मुखदृष्टि से मोक्षमार्ग प्रगट होगा।

प्रश्न—संयोग आयें तद्नुसार अवस्था बदलती दिखायी देती है न?

उत्तर—यह बराबर नहीं है; वस्तु स्वभाव को देखने से ऐसा दिखायी नहीं देता; अवस्था बदलने का स्वभाव वस्तु का अपना है—ऐसा दिखायी देता है। कर्म का मंद उदय हो इसलिये मंदराग और तीव्र उदय हो, इसलिये तीव्र राग—ऐसा नहीं है; अवस्था एकरूप नहीं रहती परंतु अपनी योग्यता से मंद-तीव्ररूप से बदलती है—ऐसा स्वभाव वस्तु का अपना है, वह कहीं पर के कारण नहीं है।

भगवान के निकट जाकर पूजा करे या शास्त्र श्रवण करे, उससमय अलग परिणाम होते हैं और घर पहुँचने पर अलग परिणाम हो जाते हैं; तो क्या संयोग के कारण वे परिणाम बदले? नहीं; वस्तु एकरूप न रहकर उसके परिणाम बदलते रहें—ऐसा ही उसका स्वभाव है; उन परिणामों का बदलना वस्तु के आश्रय से ही होता है, संयोग के आश्रय से नहीं। इसप्रकार वस्तु स्वयं अपने परिणाम की कर्ता है—यह निश्चित सिद्धांत है। **इन चार बोलों के सिद्धांतानुसार वस्तुस्वरूप को समझे तो मिथ्यात्व की जड़ें उखड़ जायें और पराश्रित बुद्धि छूट जाये। ऐसे स्वभाव की प्रतीति होने से अखंड स्ववस्तु पर लक्ष जाता है और सम्यग्ज्ञान होता है।** सम्यग्ज्ञानपरिणाम का कर्ता आत्मा स्वयं है। पहले अज्ञानपरिणाम भी वस्तु के ही आश्रय से थे और अब ज्ञानपरिणाम हुए, वे भी वस्तु के ही आश्रय से हैं।

मेरी पर्याय का कर्ता दूसरा कोई नहीं है, मेरा द्रव्य परिणमित होकर मेरी पर्याय का कर्ता होता है—ऐसा निश्चय करने से स्वद्रव्य पर लक्ष जाता है और भेदज्ञान तथा सम्यग्ज्ञान होता है। अब उस काल कुछ चारित्रदोष से रागादि परिणाम रहे, वे भी अशुद्ध निश्चयनय से आत्मा का परिणमन होने से आत्मा का कार्य है—ऐसा धर्मी जीव जानता है; उसे जानने की अपेक्षा से व्यवहारनय को उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान कहा है। धर्मी को द्रव्य का शुद्धस्वभाव लक्ष में आ गया है। इसलिये सम्यक्त्वादि निश्चय कार्य होते हैं और जो राग शेष रहा है, उसे भी वे अपना परिणमन जानते हैं परंतु अब उसकी मुख्यता नहीं है, मुख्यता तो स्वभाव की हो गई है। पहले अज्ञानदशा में मिथ्यात्वादि परिणाम थे, वे भी स्वद्रव्य के अशुद्ध उपादान के आश्रय से ही थे; अनित्य धर्म भी प्रत्येक समय स्वतंत्र है, परवस्तु है, इसलिये यह है—ऐसा नहीं है। परंतु जब निश्चित किया कि मेरे परिणाम अपने द्रव्य के ही आश्रय से होते हैं, तब उस जीव को मिथ्यात्वपरिणाम नहीं रहते; उसे तो सम्यक्त्वादिरूप परिणाम ही होते हैं। अब जो रागपरिणमन साधकपर्याय में शेष रहा है। उसमें यद्यपि उसे एकत्वबुद्धि नहीं है, तथापि वह परिणमन अपना है—ऐसा वह जानता है। ऐसा व्यवहार का ज्ञान, उस काल का प्रयोजनवान है। सम्यग्ज्ञान होता है, तब निश्चय-व्यवहार का यथार्थ ज्ञात होता है, तब द्रव्य-पर्याय का स्वरूप ज्ञात होता है, तब कर्ता-कर्म का स्वरूप ज्ञात होता है और स्वद्रव्य के लक्ष से मोक्षमार्गरूप कार्य प्रगट होता है; उसका कर्ता, आत्मा स्वयं है।

—इसप्रकार इस २११वें कलश में आचार्यदेव ने चार बोलों द्वारा स्पष्टरूप से अलौकिक वस्तुस्वरूप समझाया है, उसका विवेचन पूर्ण हुआ।●

भजन

मोक्ष के प्रेमी हमने कर्मों से लड़ते देखे।
मखमल पै सोनेवाले भूमि पै पड़ते देखे।टेक॥

सरसों का दाना जिनके बिस्तर पर चुभता था।
काया की सुधि नांहीं गीदड़ तन भखते देखे॥१॥

अर्जुन वा भीम जिनके बल का न पार था।
आत्मोन्नती के कारण अग्नि में जलते देखे॥२॥

सेठ सुदर्शन प्यारा राणी ने फंदा डाला।
शील को नांहीं भंगा शूली पर चड़ते देखे॥३॥

पारसनाथ स्वामी इस ही भव मोक्षगामी।
करमों ने नांहीं छोड़ा पत्थर तक पड़ते देखे॥४॥

बौद्धों का जोर था जब, निकलंक देव देखो।
धर्म को नांहीं छोड़ा मस्तक तक कटते देखे॥५॥

भोगों को त्याग चेतन जीवन ये बीत जाये।
तृष्णा न पूरी होई डोली पर चढ़ते देखे॥६॥

—मुमुक्षु बहिन, मलकापुर

सम्यक्त्व प्राप्त होते ही-अनंत गुणों का भंडार प्रगट हो जाता है।

(कार्तिक बदी ४ व ५ के दिन स्वामीजी के हृदय में मंथन में से चैतन्य रत्नाकर की महिमा पूर्वक जो भाव प्रगट हुये, उसमें से प्रवाहित होता हुआ सम्यक्त्व का निर्मल प्रवाह)

अनंत गुणों का स्वरूप यह आत्मा ही है; उसकी अनुभवसहित प्रतीति होना, वह सम्यग्दर्शन है। ऐसा सम्यग्दर्शन होने से अर्थात् जिसप्रकार श्रद्धागुण की पर्याय निर्मल हो गई उसीप्रकार अनंत गुण की परिणति भी शुद्धतासहित प्रगट होती है। ज्ञानगुण का परिणमन उस समय स्व को पकड़ने की योग्यतावाला होकर सम्यक्त्व के रूप में प्रगट हुआ; आनंदगुण का अंश प्रगट हुआ; उसीप्रकार **अकारणकार्यत्व शक्ति की** निर्मल पर्याय भी प्रगट हुई, अर्थात् कि राग के साथ कारण-कार्यपना नहीं रहा; राग मेरे सम्यक्त्वादि का कारण, और मैं उसका कर्ता, ऐसा राग के साथ कर्ताकर्मपना धर्मात्मा के नहीं होता। इसीप्रकार **विभुत्वशक्ति भी निर्मलतासहित** व्यक्त हुई अर्थात् सभी गुणों की निर्मल पर्याय में आत्मा विभु होकर व्याप्त हो गया। इसप्रकार सम्यक्श्रद्धा होते ही अनंत गुण उछलते हैं अर्थात् निर्मल पर्यायरूप परिणमित होते हैं; वहाँ राग की अकर्तारूप **अकर्तृत्वशक्ति,** राग की अभोक्तारूप **अभोक्तृत्वशक्ति** ऐसी अनंत शक्ति की निर्मलता प्रगट हुई। इसप्रकार सम्यक्त्वप्रतीति का भाव अकेला-लूखा नहीं है, परंतु साथ में आनंद का, **प्रभुता का, विभुता का,** अकारणकार्यत्व का, **स्ववीर्य का, जीवत्व का,** इसतरह अनंत शक्ति के निर्मल परिणमन सहित होती हुई सम्यक् प्रतीति प्रगट होती है।

इस सम्यक् प्रतीति में जैसा पर्याय का निर्मल स्वाद आया, वैसा निर्मल स्वभाववाला संपूर्ण तत्व है-ऐसी प्रतीति साथ ही आयी है। सर्वज्ञता की शक्ति प्रतीति में आई अर्थात् श्रद्धा अपेक्षा केवलज्ञान हो गया—इसी तरह **सर्वदर्शीशक्ति** प्रतीति में आयी, इससे अब अल्पकाल में सर्वज्ञता और सर्वदर्शिता आत्मा में से प्रगट होगी-ऐसी भी प्रतीति में आ गया।

शुद्धद्रव्य प्रतीति में आते ही, श्रद्धागुण की तरह अनंतानंत गुण का पर्याय में शुद्ध परिणमन होने लगा, पर्याय में आनंद के वेदन के अंशसहित संपूर्ण आत्मा आनंदस्वरूप

है—ऐसा प्रतीति में आ गया। इसप्रकार अनंत गुण की निर्मल परिणति सहित सम्यक्त्व हुआ; वहाँ अनंत गुणोंवाला चैतन्यरत्नाकर उछला—प्रगट हुआ।

सम्यक्त्व में आत्मा की प्रतीति है, आत्मा के अनंत गुण हैं, इन सभी का कार्य पर्याय में आता है; जैसे अकारणकार्यत्व का पर्याय में परिणमन हुआ अर्थात् राग के साथ कारण-कार्यपना नहीं रहा; विभुत्व का शुद्ध कार्य प्रगट हुआ, वहाँ अनंत गुणों में निर्मलतासहित व्याप्त हुए; प्रकाशशक्ति का कार्य प्रगट हुआ, वहाँ सभी गुणों का प्रत्यक्ष संवेदन पर्याय में प्रगट हुआ। इसतरह सभी गुणों का कार्य सम्यक्त्व होते ही पर्याय में आता है। और श्रीमद् राजचंद्रजी ने भी '**सर्वगुणांश ते सम्यक्त्व**' ऐसा कहा है। कर्ता-भोक्ता, आनंद, प्रभुता, वीर्य-इन सभी गुणों की प्रतीति होते ही उन सभी का कार्य पर्याय में आया है।

स्वयं प्रकाशमान ऐसी स्वसंवेदनशक्ति से आत्मा स्वानुभव प्रत्यक्ष हुआ, वहाँ अनंत गुणों का निर्मल अंश स्वानुभव के समय साथ में आया है। अहा! अनंत आकाश से भी जिसके स्वभाव की विशालता, ऐसे आत्मा की प्रतीति करने से तो संपूर्ण प्रभुता का सागर उछलता है; प्रभुता का कार्य प्रतीति के साथ ही प्रगट होता है; वेदन में अनंत गुणों की पर्याय प्रगटरूप आई है। ज्ञानचेतना अंतर्मुख कार्य करती है, उसमें अनंत गुण के निर्मल अंकुर फूटे। ऐसा सम्यग्दर्शन होने पर केवलज्ञान न हो, ऐसा होता ही नहीं। एक न्याय से-केवलज्ञान के समान सम्यग्दर्शन, अप्रतिपाति स्वभाव को प्रतीति में अंगीकार करता है। चारित्रगुण का पिंड प्रतीति में आते ही उस प्रतीति के साथ चारित्रगुण का अंश भी प्रगट हुआ। ऐसी प्रतीति पर के लक्ष से नहीं हो सकती। अनंत गुणों के पिंडरूप जो द्रव्य भगवान हैं, उनको ध्येय बनाकर-उनके ध्यान से अनंत गुणों का कार्य प्रगट हो जाता है। अनंत गुण का कारणरूप तो है ही, परंतु उनके सन्मुख होकर उनको कारण बनाये बिना निर्मल कार्य की उत्पत्ति होती नहीं।

अहो, जैसी द्रव्य की महत्ता, वैसी ही उसकी प्रतीति की महत्ता है। उस प्रतीति में अनंत गुणों का कार्य आ जाता है, अनंत गुणों का भंडार सम्यक्त्व होते ही खुला है। '**सब आगमभेद सु उर बसे**' वस्तु उसके हाथ में आ गई। भले ही कभी विशेष पहलू का स्पष्टीकरण करते न भी आता हो, परंतु स्ववस्तु को इसने ग्रहण कर ली है, स्ववस्तु का अपार वैभव उसके हाथ में आ गया है।

अरे, सम्यक्त्व की पूंजी कितनी विशाल है! इसका जगत को पता नहीं।

अमूर्तगुण, निष्क्रियत्वगुण इत्यादि अनंत गुण का संपूर्ण पिंड एक साथ प्रगट हुआ है। ऐसे आत्मा की प्रतीति—'यह आत्मा' ऐसी प्रतीति-वह सम्यग्दर्शन है। सम्यक्त्व होते ही **स्वच्छत्वशक्ति** का कार्य ऐसा प्रगट हुआ कि सभी गुणों की पर्याय कुछ अंश में स्वच्छ हो गई। सभी गुणों का परिणमन केवलज्ञान की तरफ चला। इसमें बीच में राग का अवलंबन है ही नहीं। शुभराग से सम्यक्त्व होता है, ऐसी मान्यतावाला सम्यक्त्व को पहिचानता ही नहीं।

अहा! सम्यग्दर्शन तो केवलज्ञान को बुलाता है, आवाज लगाता है कि हे केवलज्ञान! मेरे आत्मा में शीघ्र आना। सम्यग्दर्शन पूर्ण आत्मा की प्रतीति करके केवलज्ञान को बुलाता है, केवलदर्शन को बुलाता है, पूर्णानंद को बुलाता है, अनंत गुण की शुद्धपर्याय को बुलाता है। ऐसा सम्यग्दर्शन है।

प्रभु तेरे मार्ग को।

*** जैसे-जैसे में सूक्ष्म विचारों में गहरा उतरता हूँ, वैसे वैसे तुम्हारे तत्त्व के चमत्कार मेरे स्वरूप को प्रकाशित करते हैं।** *[श्रीमद् राजचंद्र]*

तत्त्वचर्चा

[७-८]

तत्त्वरसिक जिज्ञासुओं को प्रिय, 'दस प्रश्न दस उत्तर' का यह विभाग पूज्य गुरुदेव के निकट होनेवाली तत्त्वचर्चाओं तथा शास्त्रों पर से तैयार किया जाता है। ब्रह्मचारी हरि जैन

(७१) प्रश्न - दोज के चंद्र की तीन कलाएँ होती हैं; इस दृष्टांत द्वारा भेदज्ञान की तीन कलाएँ किसप्रकार बताना ?

उत्तर-पूर्ण चंद्र की सोलह कलाएँ होती हैं; बाद में क्रमशः घटते-घटते अमावस्या को एक कला तो प्रकाशित रहती ही है; इसके बाद वृद्धि होते-होते दोज के दिन तीन कला हो जाती है। ऐसे ही धर्मी को भेदज्ञानरूपी जिस दोज का उदय हुआ, वह रत्नत्रय के

अंशरूप तीन कलाओं युक्त है, अर्थात् सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और स्वरूपाचरण चारित्र-इन तीन कलाओं सहित भेदज्ञानरूपी दोज का उदय हुआ है। (वैशाख सुदी २ के प्रवचन से)

(७२) **प्रश्न**-एक साथ अधिक से अधिक कितने जीव केवलज्ञान प्राप्त करते हैं ?

उत्तर-एक साथ अधिक से अधिक १०८ जीव केवलज्ञान प्राप्त करते हैं।

(७३) **प्रश्न**-एक तीर्थङ्कर को एक से अधिक गणधर होते हैं ?

उत्तर-हाँ; इस चौबीसी में सबसे अधिक (११६) गणधर-सुमतिनाथ प्रभु के, और सबसे कम (१०) गणधर पार्श्वनाथ प्रभु के हुए। सभी गणधर नियम से उसी भव में मोक्ष जानेवाले होते हैं।

(७४) **प्रश्न**-'जिनपद निजपद एकता' अर्थात् क्या ?

उत्तर-'जिनपद निजपद एकता'—ऐसा कहकर आत्मा के परमार्थस्वरूप-स्वभाव को बतलाया है। परमार्थ से अरिहंत के स्वभाव में और मेरे आत्मा के स्वभाव में किसी प्रकार का अंतर नहीं है-इसप्रकार जिनसमान निजस्वभाव को जाने, वह 'जिन' होता है। जीव को सम्यग्दर्शन हुआ (अथवा सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये अपूर्वकरण में प्रवेश किया) वहाँ उसे 'जिन' कहा गया है। सर्वज्ञ जैसे आत्मस्वभाव का अनुभव करना सर्व शास्त्रों का सार है। श्रीमद् राजचंद्रजी का पूरा पद इसप्रकार है:-

जिनपद निजपद एकता भेदभाव नहीं कांई,
लक्ष्य थवानै तेहनो कह्यां शास्त्र सुखदायी।

(७५) **प्रश्न**-आत्मा को 'परमात्मा' किसप्रकार कहा गया है ?

उत्तर-सर्वज्ञतारूप परम उत्कृष्ट उसका स्वभाव है, इसलिये वह परमात्मा है।

(७६) **प्रश्न**-परमात्मा होते हुए संसार में क्यों भटक रहा है ?

उत्तर-अपने परमात्मस्वभाव को भूल गया है इसलिये।

(७७) **प्रश्न**-परमब्रह्म के जिज्ञासु को अर्थात् मोक्ष के अभिलाषी को कुछ कार्य करना पड़ता है ?

उत्तर-हाँ; अपने स्वभाव की सम्यक् प्रतीति और उसमें लीनता (मग्नता)। अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप कार्य प्रत्येक जिज्ञासु का कर्तव्य है। नियमसार में कुन्दकुन्दस्वामी ने कहा है कि मोक्ष के लिये शुद्ध रत्नत्रय की आराधना, वह नियम से कर्तव्य है। शुद्ध रत्नत्रय, यह ज्ञानभावमय है, यही धर्मी का कार्य है। और ऐसे अपने

ज्ञानभावरूप कार्य के अलावा अन्य समस्त भावों में उसका अकर्तापना है।—यह परमब्रह्म अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त करने का उपाय है।

(७८) **प्रश्न**–इन्द्रियज्ञान किसके आश्रित है ?

उत्तर–इन्द्रियज्ञान वह आत्मा के परिणाम हैं, और परिणाम प्रत्येक समय परिणामी के आश्रय से होते हैं–इस सिद्धांत से सिद्ध होता है कि इन्द्रियज्ञान के परिणाम आत्मा के आश्रित हैं।

—परन्तु इस इन्द्रियज्ञान का लक्ष आत्मा के ऊपर नहीं है, यदि आत्मा के ऊपर लक्ष जाये तो इन्द्रियज्ञान न रहे, ज्ञान अतीन्द्रिय हो जाये। इन्द्रियज्ञान द्वारा आत्मस्वभाव लक्ष में नहीं आ सकता।

(७९) **प्रश्न**–इन्द्रियज्ञान के परिणाम आत्मा के आश्रित हैं—ऐसा आपने कहा, परंतु आत्माश्रित परिणामों को तो मोक्षमार्ग कहा गया है, और इन्द्रियज्ञान तो कहीं मोक्षमार्ग है नहीं ?

उत्तर–आत्माश्रित–परिणामों को जहाँ मोक्षमार्ग कहने में आया है, वहाँ 'आत्माश्रित' परिणाम अर्थात् आत्मस्वभाव की ओर झुके हुए परिणाम–ऐसा समझना। इन्द्रियज्ञान आत्मस्वभाव की ओर उन्मुख न होने से वह मोक्षमार्ग नहीं है। इन्द्रियज्ञान को यहाँ आत्माश्रित परिणाम कहा गया। इसमें 'आत्माश्रित' का अर्थ आत्मा की सत्ता के आधार से हुए परिणाम–ऐसा समझना। जगत में जिस किसी पदार्थ में जो भी परिणाम होते हैं, वह परिणाम उस पदार्थ की सत्ता में ही होते हैं, पदार्थ की सत्ता के बाहर उसके परिणाम कभी होते ही नहीं। इसलिये शुद्ध अथवा अशुद्ध; जड़ अथवा चेतन चाहे जैसे परिणाम हों, वह सभी अपनी–अपनी वस्तु के आश्रित ही होते हैं; इस न्याय के आधार से इन्द्रियज्ञान के परिणाम भी आत्मा के आश्रय से ही होते हैं। इन्द्रियज्ञान के परिणाम कहीं जड़ इन्द्रिय के आश्रय से नहीं होते–तथापि इसमें मोक्षमार्ग आ जाता है–वह किसप्रकार ? जिसने ऐसा निश्चय किया कि मेरे सभी परिणाम अपने आत्मा के आश्रय से ही होते हैं–उसकी दृष्टि कहाँ पहुँची है ? उसकी दृष्टि परिणामी द्रव्य पर पहुँची, अर्थात् द्रव्य के लक्ष से उसे निर्मल परिणाम प्रगट हुए। इसप्रकार इसमें मोक्षमार्ग आ जाता है। इन्द्रियज्ञान आत्मा के आश्रय से होता है–ऐसा निश्चय करनेवाले जीव की दृष्टि इन्द्रियज्ञान से हटकर परिणामी ऐसे त्रिकाली आत्मा पर जाती है। वहाँ उसे मात्र इन्द्रियज्ञान ही नहीं रहता, बल्कि स्वभाव के लक्ष से अतीन्द्रियज्ञान होता है और मोक्षमार्ग प्रगट होता है।

(८०) **प्रश्न**–निगोद के जीव के जो परिणाम हैं, वह भी तो उस जीव के आश्रय से ही होते हैं, तथापि उसे मोक्षमार्ग क्यों नहीं प्रगट होता ?

उत्तर–क्योंकि मेरे परिणाम मेरे द्रव्य के आश्रय से होते हैं—ऐसा लक्ष वह जीव नहीं करता; इसलिये स्वलक्ष से जो शुद्ध परिणाम प्रगट होना चाहिये, वे नहीं होते। मेरे परिणाम मेरे द्रव्य के आश्रय से होते हैं–ऐसा निश्चय करनेवाले को अन्तर्दृष्टि से अवश्य मोक्षमार्ग प्रगट होता है। रागादि परिणाम यद्यपि स्वद्रव्य के आधार से ही होते हैं परंतु वे परिणाम, स्वभाव के लक्ष से नहीं होते; इसलिये वे मोक्षमार्ग नहीं हैं। स्वद्रव्य को लक्ष में लेने से जो शुद्ध परिणाम हुए, वही निश्चय से मोक्षमार्ग हैं, और पश्चात् जो इन्द्रियज्ञान और शुभराग शेष रहा, उसे ज्ञानी व्यवहार से अपने परिणाम जानता है, परंतु उसे मोक्षमार्ग नहीं जानता।

(८१) **प्रश्न**–पूर्व जन्म की ढाई वर्ष की गीता ही इस जन्म की पाँच वर्ष की राजुल है, और उसे उसका स्मरण हुआ—यह बात सच है ?

उत्तर–हाँ, यह बात सच है। यहाँ तत्संबंधी विशेष विवेचन में न उतरते हुए तात्त्विक दृष्टि से इतना ही स्पष्टीकरण करना है कि पुनर्जन्म है और उसकी स्मृति हो सकती है। इतना ही नहीं परंतु यहाँ से जो अगम्य माने जानेवाले ऐसे क्षेत्र और असंख्य वर्षों के पहले का ज्ञान (स्मरण) भी जीव को हो सकता है, और ऐसे ज्ञानवाले आत्मा अभी (वर्तमान) विद्यमान हैं। जीव की ज्ञानशक्ति अगाध है—वह क्या नहीं जान सकता ? पूज्य स्वामीजी के श्रीमुख से अनेक बार इस बात का दिग्दर्शन हो चुका है। उसमें इस मगसिर शुक्ला तृतीया के दिन पूज्य स्वामीजी के मुख कमल से ही गयी आनंदकारी महिमा मुमुक्षुओं के हृदय में चिरस्मरणी बन गई है। (शास्त्र-पुराणों में भी इसके हजारों दृष्टांत मौजूद हैं। श्रीमद् राजचंद्रजी लिखते हैं कि—''पुनर्जन्म है; अवश्य है, इसके लिये अनुभव सहित 'हाँ' कहने के लिये मैं अडिग हूँ'' इससे भी अधिक प्रबल प्रमाण भी इस संबंध में हैं) पुनर्जन्म के संबंध में जैन सिद्धांत ऐसा कहता है कि संसारी जीव वर्तमान देह से छूटकर तुरंत अन्य देह धारण कर लेता है। पूर्वजन्म का स्मरण शरीर और जीव की अत्यंत-भिन्नता को सिद्ध करता है।●

सच्चा आत्मा कब अनुभव में आता है ?

सच्चा आत्मा कैसा है, वह जीव ने कभी जाना नहीं है। सच्चा आत्मा अर्थात् आनंदस्वभाव से परिपूर्ण भूतार्थ आत्मा; उसे अंतर्मुख अनुभूति द्वारा जाने तो आनंदसहित सम्यक्त्वादि होते हैं।

[परमात्मप्रकाश प्रवचन, गाथा८०]

जिसकी परिणति में अपने शुद्ध आत्मा का स्वसंवेदन नहीं है, उसकी परिणति किसी न किसी प्रकार विषय-कषायों के आधीन वर्तती है।

भिन्न आत्मा का अनभिज्ञ मूढ़ जीव अपने में तो शरीर को ही आत्मा मानता है और उसीप्रकार सामनेवाले जीव में भी शरीर को ही आत्मा मानता है; इसलिये सामनेवाले आत्मा की भी सच्ची पहिचान उसे नहीं होती। शरीर से या राग से ज्ञानी को पहिचानना, वह सच्ची पहिचान नहीं है; ज्ञानी तो ज्ञानपरिणतिवान हैं। इसीप्रकार सर्वज्ञ भगवान की भी यथार्थ पहिचान तभी होती है, जब स्वयं इन्द्रियातीत होकर अपने ज्ञानस्वभाव को अनुभव में ले; राग से और इन्द्रियों से पार अपने ज्ञानस्वभाव के अंतर्मुख अनुभव बिना सर्वज्ञदेव या ज्ञानी के आत्मा को नहीं जाना जा सकता। इसप्रकार ज्ञानी की या केवली की सच्ची पहिचान जीव ने कभी नहीं की है। बहिरात्मा को अपने में देहबुद्धि होने से दूसरे आत्माओं को भी वह देहबुद्धि से ही देखता है।

देखो, इसमें यह सिद्धांत आ गया कि अपने शुद्ध स्वतत्त्व को जानकर उपादेय किये बिना दूसरे का सच्चा ज्ञान नहीं होता। अंतर की अनुभूति द्वारा ही स्वतत्त्व उपादेय होता है। उपादेय अर्थात् सर्व प्रकार से आराधना योग्य। श्रद्धा से, ज्ञान से, चारित्र से सर्वप्रकार से शुद्ध आत्मा सेवन करनेयोग्य है, इसलिये उससे भिन्न अन्य कोई भाव अन्य किसी प्रकार सेवन करने योग्य नहीं हैं-ऐसा भी उसमें आ गया।

आत्मवस्तु नित्य है, उसमें आनंद भी नित्य है। असंख्यप्रदेशी विस्तृत आत्मा सर्वप्रदेशों में आनंदस्वभाव से परिपूर्ण है; उसमें अंतर्मुख होकर उसकी आराधना करने से पर्याय में वह आनंद उल्लसित होता है। ऐसा शुद्ध आत्मा ही भूतार्थ आत्मा है और उसके सेवन से ही सम्यग्दर्शनादि होते हैं।

भूतार्थस्वभाव के सन्मुख होने पर ही सच्चा आत्मा अनुभव में आता है, पर-सन्मुख देखने से या मात्र पर्याय की ओर देखने से सच्चा आत्मा दृष्टि में नहीं आता। सच्चे आत्मा की दृष्टि कहो या भूतार्थस्वभाव की दृष्टि कहो, वही सम्यग्दर्शन है। सच्चे आत्मा को जाने बिना सम्यग्दर्शन कैसे होगा ?

जिसने सच्चे आत्मा को ही नहीं जाना, वह आत्मा की आराधना कहाँ से करेगा ? नित्य अतीन्द्रिय आनंद से भरपूर इस आत्मस्वभाव को अन्तर्मुखपरिणति द्वारा उपादेय करने से सच्चा आत्मा श्रद्धा-ज्ञान में आता है।—इसका नाम धर्म तथा मोक्षमार्ग है!

अरे, ऐसे आनंदमय चैतन्यतत्त्व में विषय-कषाय कैसे और शरीर कैसा ? परंतु उसे भूलकर मूढ़ जीव, शरीर को आत्मा में युक्त करके अर्थात् उसी को आत्मा मानकर विषय-कषायों में युक्त वर्तता है, शुद्धात्मा के आनंद का वह अनुभव नहीं कर सकता; स्वभाव के आधीन हो तो सम्यक् परिणमन होकर आनंद का अनुभव हो; परंतु स्वभाव को भूलकर विषय-कषाय के आधीन हुआ, इसलिये परवश होकर दुःख का ही अनुभव करता है।

भाई, सच्चा आत्मा तो वह कहलाता है कि जिसके सन्मुख होने से परम आनंद का स्वाद आये। 'आत्मा' तो आनंद देनेवाला है, दुःख देनेवाला नहीं है। आत्मस्वभावोन्मुख हो और दुःख रहे, ऐसा नहीं हो सकता; क्योंकि दुःख आत्मा के स्वभाव में है ही नहीं; आत्मा के स्वभाव में तो सुख ही भरा है, आनंद ही भरा है। एक बार ऐसे आत्मा को अनुभूति में ले।

आत्मा की ऐसी अनुभूति आठ वर्ष की बालिका को भी होती है; उसके लिये दीर्घकाल की आवश्यकता नहीं है, परंतु चैतन्यस्वभाव की रुचि जागृत करके पर्याय को अंतर्मुख करने से तत्क्षण ही ऐसी आत्मा की अनुभूति होती है; और ऐसी अनुभूति करे, तब राग से पार सच्चे आत्मा की तथा सर्वज्ञ एवं साधक संतों की पहिचान होती है और तभी मोक्षतत्त्व को यथार्थ जाना कहा जाता है।

शुद्धात्मा का अनुभव करनेवाला चमत्कारिक ज्ञान

'शुद्ध ज्ञानमात्र जीवद्रव्य' उसमें संपूर्ण ग्रंथ आ जाता। पूरे शास्त्र का सार 'शुद्ध ज्ञानमात्र जीवद्रव्य' के अनुभव में आ जाता है। कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि हमारे गुरुओं ने कृपा करके ऐसे शुद्धात्मा का उपदेश दिया। शुद्ध आत्मा का अनुभव ही मोक्षमार्ग है, इसलिये आप भी उसी का अनुभव करो। शुद्धात्मा के अनुभव करने का यह अवसर है। हे जीव! विकल्पों के जाल से अब बस करो... अंतरस्वरूप में लीन होने का अब अवसर आ गया।

आत्मा को शुद्धस्वरूप का अनुभव करना ही मोक्ष का मार्ग है, इससे अन्य जो मार्ग हैं, वे कोई मोक्षमार्ग नहीं हैं; इसलिये अन्य समस्त अभिप्रायों को छोड़कर शुद्धजीव के अनुभवरूप केवल एक ही मोक्षमार्ग है, उसी का अनुभव करो; यही तात्पर्य है। ऐसे शुद्ध जीव के अनुभवरूप जो समयसार, उससे उच्च अन्य कोई है ही नहीं। शुद्ध जीव के अनुभवरहित द्रव्य क्रियाएँ जैसे कि—शास्त्र का पढ़ना-लिखना, यह सभी प्रयोजनरूप नहीं माने जा सकते; इनसे किंचित् भी मोक्षमार्ग का साधन नहीं हो सकता। शुद्धज्ञानमात्र वस्तु का अनुभव ही एकमात्र जीव का सर्वस्व है, वही उपादेय है, वही मोक्षमार्ग है, इसलिये सभी प्रकार के उपायों के द्वारा शुद्ध जीव के स्वरूप का अनुभव करना चाहिये।

भाई, यह शरीर तो पृथक् है, और एक बार पृथक् होने का समय इस भव में ही आनेवाला है। अतः इस समय आत्मा का अनुभव करने का अवसर प्राप्त कर ले। राग का जिसमें स्पर्श भी नहीं, ऐसा मोक्षमार्ग है। अंतर के विकल्प भी जहाँ शरणरूप नहीं हो सकते, वहाँ शरीर की तो बात ही कहाँ रही ? वास्तव में तो अंतर का चैतन्यतत्त्व ही शरणरूप होता है। अरे, अधिक प्रलाप से क्या प्रयोजन है ! **अलम् अलम् अति जल्पैः** अर्थात् ऐसे शुद्ध आत्मा के अनुभव के अतिरिक्त अन्य विकल्पों से और वचनों से बस होओ... बस होओ। विकल्प तो आत्मतत्त्व से पृथक् ही वस्तु है। विकल्प अगर आत्मा ही होते तो इनको आत्मा से पृथक्

(आस्रव) क्यों कहा जाता ? इसलिये शुद्ध चैतन्य में विकल्प है ही नहीं। विकल्पों की जाल तो झूठी है, और विकल्प जाल से, हे जीव ! अब बस कर... बस कर ! अंतर आत्मा में ढलने का अब अवसर आ गया... इसलिये अन्य विकल्पों को और वचनों को अब बंद कर। विकल्पों के आश्रय की भावना अब छोड़ दे, शुद्ध चैतन्य की शरण ले। जिसका एक-एक रोम ९६ प्रकार के रोगों का निवास-स्थान है, ऐसे शरीर में तू मूर्छित हो गया, परंतु भाई, इस शरीर की किसी क्रिया में मोक्षमार्ग है ही नहीं। इसलिये अब शरीर संबंधी विकल्पों को दूर कर। शुद्धात्मा के अनुभव से बाहर जो मोक्षमार्ग मानता है, वह जीव बहिरात्मा है। अरे जीव ! अनंत शक्तिमय तेरा आत्मा, इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार से मोक्षमार्ग की खोज रहने दे। निज रस से परिपूर्ण ऐसे उत्कृष्ट शुद्ध आत्मा को ही अनुभव में ले।

अहा ! जिस ज्ञान से अंतर्मुख होकर अतीन्द्रिय आत्मा को जाना, उस सम्यग्ज्ञान की महिमा की क्या बात ? उस अतीन्द्रिय ज्ञान के मूल्य का क्या कहना ? साधारण धारणा द्वारा पूर्व भव का किसी को किंचित् ज्ञान हो जाये और जिस ज्ञान का धर्म के साथ किसी प्रकार का संबंध नहीं हो - फिर भी ऐसे साधारण ज्ञानधारी को देखते ही लोगों को चमत्कार मालूम होने लगता है। परंतु भाई, आत्मा की ज्ञानशक्ति तो अपार है, उसके समक्ष ऐसे ज्ञान की क्या महिमा ? अंतर में इन्द्रियों से पार, अनादि-अनंत अपार शक्ति से भरपूर ऐसे आत्मा को स्व-संवेदन से अनुभव में ले; उस अतीन्द्रियज्ञान के चमत्कार का जगत को पता नहीं; जो ज्ञान भवभ्रमण के नाश का कारण बने और केवलज्ञान प्राप्त कराये - ऐसा वह ज्ञान है। शुद्धात्मा को अनुभव करनेवाला ज्ञान ही चमत्कारिक ज्ञान है-जिसमें राग नहीं, इन्द्रियों का अवलंबन नहीं;—इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि हे भाई, बाह्य विकल्पों से और बाह्य जानकारी से बस कर, और अंतर में दैदीप्यमान चैतन्यसूर्य को देख, उसे अनुभव में ले-वहाँ तू परिपूर्णता को प्राप्त हो जायेगा।

'शुद्ध ज्ञानमात्र जीवद्रव्य' ऐसा कहते ही समयसार ग्रंथ संपूर्ण हो जाता है, अर्थात् समस्त शास्त्र का सार 'शुद्ध ज्ञानमात्र जीवद्रव्य' के अनुभव में पूरा हो जाता है। शास्त्र का जो कुछ भी रहस्य है, वह सभी शुद्ध ज्ञानमात्र जीवद्रव्य के अनुभव में संपूर्ण आ जाता है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि सर्वज्ञदेव से क्रमशः हमारे गुरुपर्यंत सभी परापर गुरुओं ने अनुग्रहपूर्वक हमको शुद्ध आत्मा का उपदेश दिया है। दिव्यध्वनि में भी भगवान ने शुद्ध आत्मा

बताया है। गणधरदेव ने द्वादशांग में भी शुद्ध आत्मा बतलाया है; संतों ने जितने भी शास्त्रों की रचना की, उनमें शुद्धात्मा को उपादेय बतलाया है। अहा! ऐसा शुद्ध आत्मा तू है, उसको हमने तुझे समयसार में बतलाया, उसको जानकर तू प्रसन्न हो, तेरा आत्मा कहीं चला नहीं गया, तेरा आत्मा ज्यों का त्यों ज्ञानमात्र व्यवस्थित है, उसको हम तुझे बतलाते हैं। इसलिये तू प्रसन्न हो.. प्रसन्न हो.. और अंतर में अपने शुद्धात्मा को अनुभव में ले। तेरा अखंड ज्ञानधन आत्मा किंचित् भी न्यून नहीं हुआ, इसलिये प्रसन्न होकर तू अपने शुद्धात्मा को अनुभव में ले। संत बारंबार उसके गुणगान कर करके कहते हैं कि ऐसा तेरा आत्मा है, उसे तू अनुभव में ले। यह आत्मा के अनुभव का अवसर है।

ज्ञानी का चिंतवन

ज्ञानी अपनी आत्मा का चिंतवन किस प्रकार करता है? उसे समझाकर उसकी भावना करने को कहते हैं।

केवलज्ञानस्वभावी, केवलदर्शनस्वभावी, सुखमय और केवलशक्ति स्वभावी वह मैं हूँ—ऐसा ज्ञानी चिंतवन करता है।

जो निज भावों को नहीं छोड़ता, किसी भी प्रकार के परभावों को ग्रहण नहीं करता, सर्व को जानता-देखता है, वह मैं हूँ—ऐसा ज्ञानी चिंतवन करता है।

ज्ञानी होने के लिये हे जीव! तू भी अपने आत्मा का भेदविज्ञानसहित चिंतवन कर-ऐसा श्री मुनिराज का उपदेश है।

(नियमसार, गाथा ९६-९७)

ज्ञान गोष्ठी

वीर संवत २४७१ के वैशाख मास में गर्मी की छुट्टियों के दिनों में श्री जैन स्वाध्याय मंदिर की ओर से सोनगढ़ में जैनदर्शन शिक्षण वर्ग एक मास तक रखने में आया था। उस वर्ग में आये हुये विद्यार्थियों ने आपस में किये हुए एक दिन के प्रश्नोत्तर यहाँ पर दिये जाते हैं। ऐसा शिक्षणवर्ग प्रत्येक साल रखा जाता है।

(७) **प्रश्न**—बाह्य क्रिया और आभ्यंतर क्रिया का क्या अर्थ है ?

उत्तर—वास्तव में ज्ञान की जो शुद्ध पर्याय है, सो आत्मा की आभ्यंतर क्रिया है और राग बाह्य क्रिया है, और उपचार से राग आभ्यंतर क्रिया है तथा शरीरादि की क्रिया बाह्य क्रिया है।

(८) **प्रश्न**—चैतन्य की क्रिया किसमें होती है और किसमें नहीं होती ?

उत्तर—चैतन्य की क्रिया चैतन्य में होती है, जड़ में नहीं होती।

(९) **प्रश्न**—धर्मद्रव्य का क्या अर्थ है ?

उत्तर—जो द्रव्य गति करते हुये जीव और पुद्गल के गमन में उदासीन निमित्त है, उसे धर्मद्रव्य कहा है।

(१०) **प्रश्न**—जल मछली के गमन करने में सहायक (निमित्त) होता है तो जल धर्मद्रव्य है या नहीं ?

उत्तर—जल धर्मद्रव्य नहीं है क्योंकि जल तो रूपी पदार्थ है, और रूपित्व पुद्गल का गुण है, इसलिये जल पुद्गल की दशा है।

(११) **प्रश्न**—पुद्गलद्रव्य किस गुण के द्वारा जानता है और किस गुण के द्वारा जाना जाता है ?

उत्तर—पुद्गलद्रव्य जड़ है, इसलिये उसमें जानने की शक्ति नहीं है, जीव के ज्ञान में वह अपने प्रमेयत्वगुण के द्वारा जाना जाता है।

(१२) **प्रश्न**—अगुरुलघुत्वगुण हम लोगों के प्रगट है या नहीं ?

उत्तर—अगुरुलघुत्व गुण दो तरह का होता है, एक अनुजीवी और दूसरा प्रतिजीवी; इनमें से अनुजीवी अगुरुलघुत्वगुण तो सामान्य होने से सभी के प्रगट है किंतु प्रतिजीवी अगुरुलघुत्वगुण जीवद्रव्य का विशेष गुण है, यह गुण (गुण की पर्याय) अभी हम लोगों के निर्मल रूप में प्रगट नहीं है, यह सिद्धदशा में प्रगट होता है।

(१३) **प्रश्न**—जीव के साता और असाता के उदय के अभाव से कौन सा गुण प्रगट होता है ?

उत्तर—गुण प्रगट नहीं होता किंतु उत्पाद-व्ययरूप पर्यायें क्रमशः प्रगट होती हैं जो अव्याबाध गुण की प्रगट होती है।

(१४) **प्रश्न**—सिद्ध के साता होती है या नहीं ?

उत्तर—सिद्ध के साता और असाता में से एक भी नहीं होती।

(१५) **प्रश्न**—यदि सिद्ध के कर्म का उदय आये तो वे अवतार लेते हैं या नहीं ?

उत्तर—सिद्ध भगवान में अब अशुद्धता होने की योग्यता ही नहीं है, इसलिये उनको कभी भी कर्म का उदय नहीं आता और न उनके कभी भी अवतार होता है, वे तो जन्म-मरण से रहित हो गये हैं। अक्षय अनंत सुख का निरन्तर अनुभव करते रहेंगे।

(१६) **प्रश्न**—सम्यग्दर्शन पुण्य है या गुण है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन पुण्य नहीं, किंतु धर्म है और वह गुण नहीं, किंतु श्रद्धागुण की पर्याय है।

(१७) **प्रश्न**—जब आत्मा को मोक्ष हो जाता है, तब उसका आकार कैसा होता है ?

उत्तर—लगभग अंतिम शरीर जैसा (उस शरीर से किंचित् कम) आकार होता है।

(१८) **प्रश्न**—जगत में द्रव्य कितने हैं ? उनमें सबसे बड़ा कौन है, महत्तावान कौन है और छोटा कौन है ?

उत्तर—जगत में जाति से छह द्रव्य हैं, आकाशद्रव्य सबसे बड़ा है, जीवद्रव्य सबसे महत्तावाला है, क्योंकि यही समस्त द्रव्यों को जाननेवाला है और पुद्गल परमाणु तथा कालाणु सबसे छोटे हैं।

(१९) **प्रश्न**—कम वजनवाला स्पर्श अनुजीवी गुण है या प्रतिजीवी गुण ?

उत्तर—कम वजन स्पर्श, गुण नहीं किंतु पर्याय है। वह पुद्गलद्रव्य के स्पर्श नाम के अनुजीवी गुण की पर्याय है।

(२०) **प्रश्न**—सूक्ष्मत्व किसे कहते हैं ? क्या यह ठीक है कि सूक्ष्मत्व आत्मा का अनुजीवी गुण है ?

उत्तर—इन्द्रियों के विषयरूप स्थूलता के अभाव को सूक्ष्मत्व कहते हैं; सूक्ष्मत्व आत्मा का अनुजीवीगुण नहीं किंतु प्रतिजीवी गुण है।

(२१) **प्रश्न**—कालद्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो वस्तुओं के परिणमन में निमित्त हो, उसे कालद्रव्य कहते हैं। समय, मिनिट, घंटा इत्यादि उसकी पर्याय है।

(२२) **प्रश्न**—चंद्रोदय हुआ, सूर्य अस्त हुआ, इसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य को घटित कीजिये ?

उत्तर—चंद्र और सूर्य दोनों पृथक्-पृथक् वस्तु हैं, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य एक ही वस्तु में होते हैं, दो पृथक् पदार्थों में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य घटित नहीं हो सकते।

(२३) **प्रश्न**—जीवद्रव्य में दो अगुरुलघुत्वगुण हैं, वे सामान्य हैं या विशेष ? और अनुजीवी हैं या प्रतिजीवी ?

उत्तर—जीवद्रव्य में एक अगुरुलघुत्वगुण सामान्य और एक विशेष हैं; उनमें से जो सामान्य है, वह अनुजीवी है और जो विशेष है, वह प्रतिजीवी है।

(२४) **प्रश्न**—यदि धर्मास्तिकाय यहाँ से जिनमंदिर तक जाये तो उसमें उसका कौनसा द्रव्य निमित्त होता है ?

उत्तर—धर्मास्तिकाय स्थिर द्रव्य है, वह गति करता ही नहीं।

(२५) **प्रश्न**—निगोद को स्थावर जीव कह सकते हैं या नहीं ?

उत्तर—निगोद को स्थावर जीव कह सकते हैं किंतु समस्त स्थावर को निगोद नहीं कह सकते। निगोद के अतिरिक्त अन्य स्थावर भी हैं।

(२६) **प्रश्न**—अस्तिकाय कितने हैं और कितने नहीं हैं ?

उत्तर—कालद्रव्य के अतिरिक्त पाँच द्रव्य अस्तिकाय हैं; कालद्रव्य अस्तिकाय नहीं है, एक पुद्गल परमाणु भी अस्तिकाय नहीं है किंतु उसमें स्कंधरूप होने की शक्ति होने से वह अस्तिकाय में गिना जाता है।

(२७) **प्रश्न**—अस्तिकाय द्रव्य है, गुण है अथवा पर्याय है।

उत्तर—अस्तिकाय अनेक प्रदेशवाला द्रव्य है। जो द्रव्य अनेक प्रदेशी (बहुप्रदेशी) हो, उसे अस्तिकाय कहते हैं।

(२८) **प्रश्न**—वेदनीयकर्म के नाश से कौन सा गुण प्रगट होता है ? वह अनुजीवी है या प्रतिजीवी ?

उत्तर—अव्याबाध गुण प्रगट होता है और वह प्रतिजीवी गुण है।

(२९) **प्रश्न**—अभव्यत्व अनुजीवीगुण है या प्रतिजीवी ?

उत्तर—अभव्यत्व अनुजीवीगुण है क्योंकि वह किसी पर के अभाव की अपेक्षा नहीं रखता।

(३०) **प्रश्न**—मिथ्यादृष्टि मुनि के अधिक पाप होता है या युद्ध करते हुये सम्यग्दृष्टि चक्रवर्ती के ?

उत्तर—मिथ्यादृष्टि मुनि के प्रतिक्षण मिथ्यात्व का अनंत पाप लगता है और सम्यग्दृष्टि के लड़ाई के समय भी वह अनंत पाप तो दूर हो ही गया है, इसलिये उन दोनों में से मिथ्यादृष्टि मुनि के ही अधिक पाप है। मिथ्यादृष्टि के यथार्थ मुनित्व नहीं होता।

(३१) **प्रश्न**—जीव अरूपी है और धर्म-अधर्म-आकाश-कालद्रव्य भी अरूपी हैं, फिर भी उन्हें जीव क्यों नहीं कहा जाता ?

उत्तर—यह ठीक है कि जीव अरूपी है परंतु जीव का लक्षण अरूपित्व नहीं; जीव का लक्षण तो चेतना है, अन्य चारों अरूपी द्रव्यों में चेतना नहीं है, इसलिये वे जीव नहीं हैं।

(३२) **प्रश्न**—जब कागज में अक्षर लिखे गये, तब कागज में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हुआ या नहीं ? और यदि हुआ तो किस तरह ?

उत्तर—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तो सभी वस्तुओं में होता ही है। जब कागज में अक्षर लिखे, तब उसमें लिखनेरूप दशा की उत्पत्ति हुई, कोरी दशा का व्यय हुआ और कागज ध्रुवरूप स्थिर रहा है, इसप्रकार उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होते हैं।

(३३) **प्रश्न**—छह द्रव्य के लक्षण क्या हैं ? छहों द्रव्यों के लक्षण भिन्न क्यों हैं ?

उत्तर—जीव का लक्षण चेतना है; पुद्गल का लक्षण वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, रूप है; गमन करने में निमित्त होना धर्मास्तिकाय का लक्षण है; ठहरने में निमित्त अधर्मास्तिकाय का लक्षण; सभी द्रव्यों को अवकाश (स्थान) देना आकाश का लक्षण और परिणमन में निमित्त होना, सो कालद्रव्य का लक्षण है। छहों द्रव्य पृथक्-पृथक् हैं, इसलिये उनके लक्षण भी पृथक् हैं। भिन्न-भिन्न वस्तुओं का लक्षण भिन्न-भिन्न ही होता है। अतः भिन्न अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं, इसलिये एक द्रव्य दूसरे का कभी भी कुछ कार्य कर सके, ऐसा नहीं है।

(३४) **प्रश्न**—कालद्रव्य की संख्या कितनी है ? और किस तरह रहता है ? तथा कालद्रव्य के कितने भेद हैं ?

उत्तर—लोकाकाश के जितने असंख्य प्रदेश हैं, उतने कालद्रव्य हैं और एक लोकाकाश के प्रदेश पर एक-एक कालद्रव्य स्थित है। कालद्रव्य के दो भेद हैं (१) निश्चय काल (२) व्यवहार काल। कालद्रव्य के अणुओं को निश्चय काल कहते हैं और मिनिट, घंटा, दिन इत्यादि कालद्रव्य की पर्यायों के स्थूल भेदों को व्यवहार काल कहते हैं।

(३५) **प्रश्न**—अस्तित्वगुण में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होते हैं या नहीं ?

उत्तर—होते हैं; नवीन पर्याय के अस्तित्व का उत्पाद, पुरानी पर्याय के अस्तित्व का व्यय और अस्तित्वगुण का लगातार ध्रुवरूप में स्थिर रहना-इसप्रकार अस्तिवगुण में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होते हैं।

(३६) **प्रश्न**—यदि कोई आपको मोक्ष के दो मार्ग बताये, एक हवाई जहाज का और दूसरा रेलवे का ? तो आप उनमें से कौन सा मार्ग पसंद करेंगे ?

उत्तर—मोक्ष का यथार्थ मार्ग एक ही प्रकार का है और वह आत्मा में ही है, मोक्ष का मार्ग बाहर की किसी वस्तु में-हवाई जहाज में या ट्रेन में कहीं भी नहीं है। जो बाहर के किसी साधन से मोक्षमार्ग बतलाता है, वह अज्ञानी है।

मोक्ष किसी बाहर के क्षेत्र में नहीं है, इसलिये मोक्ष के लिये बाह्य साधन जो कि निमित्त मात्र कहा है किंतु आवश्यकता नहीं है। मोक्ष तो आत्मा में ही होता है और इसलिये आत्मा की यथार्थ प्रतीति ही मोक्ष का मार्ग है।

(३७) **प्रश्न**—परमाणु के समूह को स्कंध कहा जाता है तो फिर स्कंध के समूह को क्या कहेंगे ?

उत्तर—स्कंध के समूह को स्कंध भी कहा जाता है।

(३८) **प्रश्न**—छह द्रव्यों में से अरूपी कितने और जड़ कितने हैं ? अरूपी और जड़ में क्या अंतर है ? और वह अंतर कहाँ होता है ?

उत्तर—छह द्रव्यों में पुद्गलद्रव्य के अतिरिक्त पाँच द्रव्य अरूपी हैं और जीवद्रव्य के सिवाय अन्य पाँच द्रव्य जड़ हैं। जिसमें वर्ण, गंध, रस, स्पर्श न हों, वह अरूपी है और जिसमें ज्ञान न हो, वह जड़ है। जीवद्रव्य अरूपी है किंतु जड़ नहीं है, पुद्गलद्रव्य जड़ है किंतु अरूपी नहीं है, शेष चारों द्रव्य जड़ और अरूपी हैं।

(३९) **प्रश्न**—अरहंत भगवान के कितने प्रतिजीवी गुण प्रगट हुये होते हैं ? और वे क्यों ?

उत्तर—अरहंत भगवान के एक भी प्रतिजीवी गुण प्रगट नहीं होता क्योंकि उनके चार अघातिया कर्मों का सद्भाव है; प्रतिजीवी गुण तो संपूर्ण कर्मों के नाश से प्रगट होता है।

(४०) **प्रश्न**—ज्ञान और चेतना में क्या अंतर है ?

उत्तर—ज्ञान, चेतना का एक भाग (भेद) है; चेतना के दो भेद हैं—एक दर्शन दूसरा ज्ञान।

(४१) **प्रश्न**—अस्तित्व और ध्रौव्य में क्या फर्क है ?

उत्तर—अस्तित्व में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य तीनों आ जाते हैं, किंतु ध्रौव्य कहने पर उसमें उत्पाद, व्यय नहीं आते।

(४२) **प्रश्न**—स्वभाव का नाश होता या नहीं ? और क्यों ?

उत्तर—वस्तु का जो नित्य स्वभाव है, उसका कभी नाश नहीं होता, यदि स्वभाव का नाश हो तो वस्तु का ही नाश हो जाये, क्योंकि वस्तु और उसका स्वभाव पृथक् नहीं है। जैसे ज्ञान आत्मा का स्वभाव है, यदि ज्ञान का नाश हो जाये तो आत्मा का ही नाश हो जाये क्योंकि ज्ञान और आत्मा पृथक् नहीं है।

(४३) **प्रश्न**—कार्माणवर्गणा और कार्माणशरीर में क्या फर्क है ?

उत्तर—कार्माणवर्गणा के जो परमाणु हैं, वे अभी कर्मरूप नहीं हुए किंतु उनमें कर्मरूप होने की योग्यता है। और जो परमाणु कर्मरूप शरीराकार से परिणमे हैं, उन कर्मों के समूह को कार्माणशरीर कहा जाता है।

(४४) **प्रश्न**—अरहंत के कौन से कर्म शेष हैं और वे क्यों ?

उत्तर—अरहंत के अशुद्ध उपादान अमुक गुण की पर्याय में है, इसलिये वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ये चार अघाति कर्म शेष हैं।

(४५) **प्रश्न**—केवलज्ञान पहले होता है या केवलदर्शन ? और वह क्यों ?

उत्तर—केवलज्ञान और केवलदर्शन एक ही साथ (एक ही समय) होते हैं, क्योंकि पूर्ण दशा में उपयोग का क्रम नहीं होता।

(४६) **प्रश्न**—जब धर्मद्रव्य चलता है, तब उसे कौन निमित्त होता है ?

उत्तर— धर्मद्रव्य स्वभाव से ही स्थिर है, वह कभी चलता ही नहीं है।

(४७) **प्रश्न**— धर्मद्रव्य कितने द्रव्यों के स्थिर होने में निमित्त होता है ?

उत्तर— धर्मद्रव्य स्थिर होने में निमित्त नहीं होता, किंतु जब जीव और पुद्गल गमन करते हैं, तब उसमें धर्मद्रव्य निमित्त कहा जाता है।

(४८) **प्रश्न**— संसारी जीवों के कितने तरह के शरीर होते हैं ?

उत्तर— संसारी जीवों में औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, और कार्माण ये कुल पाँच प्रकार के शरीर होते हैं। —क्रमशः

आत्मा ज्ञानस्वभावी है, जगत के पदार्थ प्रमेयस्वभावी हैं; वे पदार्थ तेरे ज्ञान में प्रमेय हों, ऐसा उनका स्वभाव है और तेरा ज्ञान उन्हें जाने, ऐसा तेरा स्वभाव है; परंतु वे पदार्थ तुझे राग-द्वेष करायें, ऐसा स्वभाव उनमें नहीं है, और उन्हें जानते हुए राग-द्वेष करे, ऐसा स्वभाव ज्ञाता में नहीं है। बस, 'ज्ञान' में तो वीतरागता ही है; जो राग-द्वेष होते हैं, वे ज्ञान में नहीं हैं, ज्ञान से बाहर हैं।

निष्कर्मरूप ज्ञानचेतना का परम सुख

(समयसार कलश २३२-२३३ के प्रवचन से)

साधक की ज्ञानचेतना आनंद के अनुभवसहित है, वह आनंदपूर्वक मोक्ष सुख का साधन करती है।

सम्यग्दृष्टि जीव अपने स्वरूप के अनुभव से हुये अतीन्द्रिय सुख से अत्यंत तृप्त है; सम्यग्दर्शन के उत्पन्न होने से पहले मिथ्यात्वभाव से जिन कर्मों का बंध हो गया है, उनके फल को वह सम्यग्दृष्टि भोगता नहीं; क्योंकि कर्म के फल में युक्त होना, वह तो चैतन्य प्राण को नष्ट करनेवाला विषवृक्ष है। चैतन्य की अमृतबेल का स्वाद जिसने चख लिया, वह विषवृक्ष के फल को किसप्रकार भोगे ? अहा, चैतन्यस्वरूप की सावधानी हुई, उस ज्ञानचेतना में कर्मफलचेतना का अभाव हो गया। मेंढ़क हो, देव हो या आठ वर्ष का बालक ही क्यों न हो,—उनमें जो सम्यग्दृष्टि हो, वह जानता है कि इन जड़कर्मों का उदय और इनका फल वह मैं नहीं, यह तो परद्रव्य हैं, और मैं तो अतीन्द्रिय चैतन्य हूँ—इसप्रकार जानता हुआ वह धर्मात्मा उदय की अवस्था में रंजित नहीं होता, उसको तो चैतन्य की ही रुचि है। चैतन्य के आनंद का जो स्वाद आता है, वही मैं हूँ—इसप्रकार वह चैतन्य का स्वाद लेता रहता है—चैतन्य के स्वाद से स्वतः तृप्त रहता है।

ज्ञानचेतना द्वारा चैतन्य के आनंद का अनुभव करता-करता, और उदय भाव से पृथक् होता-होता सम्यग्दृष्टि जीव इसप्रकार की उत्तम अवस्था को प्राप्त करता है कि जो वर्तमान में अनंत सुखरूप है और भविष्य में भी अनंत काल तक सुखरूप ही रहेगी; इसप्रकार द्रव्य के सहज स्वभावरूप ऐसा अतीन्द्रियसुख ज्ञानचेतना द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। अहा! ज्ञानचेतना ने अपने अनंत गुणनिधान को देख लिया, यह ज्ञानचेतना, बाहर से कुछ प्राप्त होगा - ऐसा नहीं मानती। अंतर में चैतन्य सुख में रमण करती-करती वह केवलज्ञान और सिद्धपद की साधना करती है। बीच में व्यवहार और शुभराग आते हैं न ? तो कहते हैं कि हाँ आते हैं, परंतु ज्ञानचेतना उनको छोड़ती जाती है, ज्ञानचेतना उनको उपादेय नहीं मानती; ज्ञानचेतना तो शुद्ध स्वभाव को ही उपादेय करके उसका अनुभव करती-करती मोक्ष को साधती है।

ज्ञानचेतना को स्वसन्मुख परिणमन कराते हुए ज्ञानीजन इस समय में लगाकर सदा काल चैतन्य के शांत अतीन्द्रिय रस का अनुभव करते रहो।

'सादि-अनंत अनंत समाधि सुख में' ऐसी दशा ज्ञानचेतना द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

निष्कर्म दशा अर्थात् जहाँ राग-द्वेष नहीं, हर्ष-शोक नहीं, कर्मचेतना अथवा कर्मफलचेतना का जहाँ अभाव, जहाँ केवल सहज सुख का ही अनुभव, ऐसी निष्कर्म अवस्था को ज्ञानचेतना द्वारा प्राप्त कर सदाकाल परम आनंद का भोग करो—ऐसा उपदेश देते हैं। वहाँ पर जो सुख है, वह स्वसत्ता में ही है—अभिन्न सत्ता में है, अपने में ही अपना सुख है अर्थात् उसको एकसत्ता का सुख कहा गया है। परद्रव्य की सत्ता, वह तो भिन्न सत्ता है, उस भिन्न सत्ता में आत्मा का सुख है ही नहीं। भिन्न सत्ता में जो सुख मानता है, उसको कभी भी सुख नहीं मिल सकता। भिन्न सत्ता में सुख माननेवाला भिन्न सत्ता के सन्मुख ही देखा करता है, परंतु स्वसत्ता के सन्मुख देखता नहीं और उसको सुख मिलता नहीं। सुख तो स्वसत्ता में है। ज्ञानचेतना द्वारा जो स्वसत्ता का अनुभव करे, वही स्वसत्ता के सुख का अनुभव कर सकता है, उसकी पर्याय सुख के प्रवाह में तन्मय हो जाती है, अर्थात् सादि-अनंतकाल तक वह सुख का ही पान किया करती है।

साधकदशा का काल असंख्य समय का है परंतु इसका फल अनंता-अनंत काल का सुख है। अज्ञानदशा से जीव ने संसार परिभ्रमण में अनंत काल बिता दिया, परंतु मोक्षदशा के आनंद का अनुभव काल इससे अनंत गुना है—कारण भूतकाल से भविष्यकाल अनंत गुना है। भाव से तो मोक्ष सुख अनंत है और काल से भी अनंत है; अब इस अनंत मोक्षसुख की साधना करते-करते कितना समय लग जाये? अनंत काल के मोक्षसुख की साधना करने में क्या अनंत काल लगेगा?—नहीं, साधकदशा का काल असंख्य समय का मर्यादित ही होता है। असंख्य समय की साधकदशा के फल में अनंत काल का मोक्ष सुख हे जीव! तू उन्हीं का पान किया ही कर। अब तेरे सुख का अन्त कभी आने ही वाला नहीं। अरे! भोग में काल व्यतीत किया, वह तो व्यर्थ गया, और इसके फल में दुःख के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। अब हे जीव! चैतन्य के अनुभव द्वारा मोक्ष सुख की साधना कर। अल्प काल के प्रयत्न से अनंत काल का सुख प्राप्त करेगा।

साधक की ज्ञानचेतना है, वह आनंद के अनुभव सहित ही है.... आनंद से नृत्य करती करती वह मोक्षसुख को साधती है।

स्वसत्ता के अवलंबन से ज्ञानी निजात्मा को अनुभवते हैं। अहो! ऐसे स्वानुभव ज्ञान से मोक्षमार्ग के साधनेवाले ज्ञानी की महिमा की क्या बात! इनकी दशा को पहचाननेवाले जीव भी निहाल हो गये हैं।

विविध वचनामृत

[आत्मधर्म का चालू विभाग : लेखांक - १५]

(२०१) शासन प्रभावना की स्वामीजी की भावना और सौराष्ट्र पर विशिष्ट उपकार

एक बार सत्य वस्तुस्वरूप की सुंदर चर्चा में स्वामीजी ने कहा, अरे! इसमें विरोध करने जैसा है ही कहाँ ? विरोधी विचार रखनेवाले भी इसे समझें तो अच्छा हो। आग्रह छोड़कर मध्यस्थ बनकर कुछ दिन सुनें तो वस्तुस्वरूप सरलता से समझ में आ जाये ऐसा है। परंतु ऐसा मौका कब आये! अरे, ऐसे सत् को समझे बिना विरोध करते हैं, विपरीत अभिप्राय का सेवन करने से तेरे आत्मा को बड़ा दु.ख होता है। किसी को दु:ख हो, ऐसा कौन चाहेगा! इसलिये मध्यस्थ होकर सत्य को समझना चाहिये। इसप्रकार अत्यंत करुणा सहित गुरुदेव को शासन प्रभावना के भाव उल्लसित होते थे। सत्य वस्तुस्वरूप की जगत में प्रसिद्धि हो, ऐसी भावना का मंथन चलता था। गुरुदेव कई बार कहते हैं कि सौराष्ट्र के जीव अत्यंत भाग्यशाली हैं कि ऐसा परम सत्य प्रतिदिन सुनने को मिलता है। सचमुच सौराष्ट्र पर आपका विशिष्ट उपकार है।

(२०२) ज्ञान की प्रसिद्धि

'**यह शरीर है**' इसप्रकार पर को जाननेवाला स्वयं ज्ञानरूप से अपनी प्रसिद्धि करता है। जाननेवाले ने स्वयं अपनी प्रसिद्धि की और '**जाननेवाला मैं हूँ**' इसप्रकार ज्ञान अपना तथा पर का भी अस्तित्व प्रसिद्ध करता है। मेरी सत्ता में ज्ञान होता है—इसप्रकार ज्ञान स्वसत्ता की प्रसिद्धि करता है। '**जगत में सिद्ध भगवान हैं**' इसप्रकार सिद्ध को जाननेवाला ज्ञान अपने को और सिद्ध को प्रसिद्ध करता है।

(२०३) सबसे बड़ा कौन ?

इतना बड़ा कौन है कि जिसके निकट आकाश भी छोटा लगता है ? वह बतलाते हुए आप कहते हैं कि—आत्मा का ज्ञानस्वभाव इतना महान है कि आकाश तो उसके निकट बिल्कुल छोटा-परमाणुतुल्य लगता है। अनंत आकाश भी ज्ञान की गंभीर शक्ति में ज्ञेयरूप होकर एक और कहीं समा जाता है। ज्ञान है, वह गंभीर स्वभावी महान शक्तिवाला है, जिसकी शक्ति का माप अन्य किसी पदार्थ की बराबर से नहीं किया जा सकता। अहो, ज्ञान सामर्थ्य की महानता की महिमा!

(२०४) विरागी को बंध नहीं होता

धर्मात्मा को अंतर्दृष्टि में स्वभाव का रंग लगा है और राग का तथा बाह्य विषयों का रंग उड़ गया है। बाह्यवस्तु त्रिकाल मुझमें है ही नहीं, और परभावों ने भी मुझमें कभी भी प्रवेश किया ही नहीं, ज्ञान और आनंद ही मेरा स्वरूप है—ऐसे शुद्धभावरूप भेदज्ञान का परिणमन धर्मी को प्रारंभ हो गया है, इससे वह सहज विरागी है, और विरागी को बंध नहीं होता—ऐसा नियम है, इसलिये धर्मात्मा को बंध होता नहीं। जिसका स्वामित्व गया, उसका कर्तृत्व-ममत्व कैसा ? ज्ञानी तो निरंतर ज्ञानचेतना के स्वामित्व भाव से परिणमता है।

(२०५) मनुष्यपना, आत्मा और आत्मा का व्यवहार

यह मनुष्यपना प्राप्त करके तू आत्मा का हित कर ले—क्योंकि मनुष्यभव दुर्लभ है—ऐसा वैराग्य के उपदेश में कहा जाता है; परंतु जब शुद्ध आत्मा का स्वरूप बतलाना हो, तब तो कहते हैं कि मनुष्यपना, वह आत्मा नहीं; उपयोगपना ही आत्मा है। मनुष्यपना दुर्लभ है, यह बात सच है, परंतु उससे कहीं वह आत्मा का स्वरूप नहीं है। **'मैं मनुष्य हूँ'**—ऐसे मनुष्यपने के भाव में रहकर कहीं आत्मा की साधना नहीं हो सकती, परंतु **'उपयोग ही मैं हूँ'**—इसप्रकार उपयोगस्वरूप में आकर आत्मा को साधा जा सकता है; उपयोगस्वरूप से आत्मा का अनुभव करे, तभी उसकी साधना होती है अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है। और ऐसी शुद्ध-परिणति को ही सच्चा आत्मव्यवहार कहा है।

(२०६) भूल और उसे दूर करनेवाला

भूल जो करता है, वही उसे दूर कर सकता है। जो अपनी स्वतंत्रता को स्वीकार नहीं करता, वह भूल को दूर करने में अपनी स्वतंत्रता कहाँ से लायेगा ? मुझे दूसरा कोई भूल करवाता है और दूसरा मेरी भूल को दूर करता है-ऐसा माननेवाला भूल को अपनी नहीं मानता तो उसे दूर कैसे करेगा ? भाई, भूलरहित तेरा स्वभाव है, और पर्याय में तेरी भूल है, इन दोनों को स्वतंत्र जान तो त्रैकालिक निर्मल स्वभाव की सन्मुखता द्वारा तू भूल को हटाकर भगवान बन जायेगा। अपनी भूल दूसरे पर डालना, यह तो अन्याय है।

(२०७) जैन-विज्ञान

किसी भी प्रकार के प्रयोग द्वारा नवीन जीव की या नवीन परमाणु की उत्पत्ति कभी भी

नहीं हो सकती। परंतु पहले से जो जीव या परमाणु विद्यमान हैं, वही रूपांतर होकर नवीन अवस्थारूप से उत्पन्न होते हुए दिखाई देते हैं।

इसीप्रकार, विद्यमान मूल वस्तु का कभी भी सर्वथा नाश नहीं होता, केवल नवीन-नवीन अवस्थाओंरूप उसका रूपांतर हुआ करता है। जीव त्रिकाल जीव ही रहता है और परमाणु त्रिकाल परमाणु ही रहता है।

(२०८) इष्ट का ध्यान

जिसे जो इष्ट हो, वह उसी का ध्यान करता है। धर्मी को अपना शुद्ध स्वभाव इष्ट है; राग होता है परंतु उसे इष्ट नहीं मानते। अज्ञानी राग के आश्रय से लाभ मानने के कारण उस राग को इष्ट मानता है अर्थात् राग का ही ध्यान करता है, राग से पार शुद्धात्मा का ध्यान उसको नहीं होता। शुद्धात्मा के ध्यान के बिना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्ध परिणमन नहीं होता। इसलिये हे जीव! तेरा इष्ट क्या है, उसे लक्ष में लेकर ध्यान कर।

(२०९) जैसा ध्यान वैसा परिणमन

आत्मा परमात्मस्वरूप है, उसको पहिचानकर, उस परमात्मस्वरूप के ध्यान द्वारा आत्मा परमात्मा होता है। जिस स्वरूप से आत्मा का ध्यान करे, वैसी पर्याय प्रगट होती है। 'मैं अशुद्ध हूँ, राग का कर्ता हूँ', इसप्रकार अशुद्धतारूप से जो आत्मा का ध्यान करता है, उसे पर्याय में अशुद्ध परिणति प्रगट होती है। और शुद्धस्वभाव तथा विकार का भेदज्ञान करके जो शुद्धस्वभाव को ध्याते हैं, उनको शुद्धता प्रगट होती है। स्वभाव का ध्यान करने से स्वसमयरूप अर्थात् मोक्षमार्गरूप परिणमन होता है; विकार और पर का ध्यान करने से परसमयरूप परिणमन होता है। पर्याय में विकार का परिणमन होते हुए भी, स्वभाव की दृष्टि से देखा जाये तो आत्मा विकाररूप परिणमित नहीं हुआ, शुद्ध ही है। ऐसे शुद्धात्मा की उपासना मोक्षमार्ग है। अंतर्मुख होकर उसका ध्यान करना, यही उसकी उपासना की रीति है।

(२१०) सुख.... दुःख

- पर को जानते हुए पर के साथ तन्मयता मानने से तन्मयता हुए बिना आत्मा दुःखी होता है।
- स्व को जानते हुए स्व के साथ तन्मय होकर आत्मा अपने अतीन्द्रिय आनंद (सुख) का वेदन करता है।

❀ महा मुनिवर एवं धर्मात्मा समाधि में उपयोग को स्व में लगाकर परम आनंद का एकरसरूप से अनुभव करते हैं।

❀ ज्ञान की दु:ख के साथ तन्मयता नहीं है; ज्ञान की तन्यमता सुख के साथ है। अज्ञानी की दु:ख और विकार के साथ तन्मयता है, पर के साथ किसी की तन्मयता नहीं है।

नया प्रकाशन

छहढाला सुबोध टीका-सचित्र [आवृत्ति]

यह ग्रंथ सर्वज्ञ वीतराग कथित सर्व शास्त्रों के साररूप होने से, पाठयपुस्तकरूप में भी अति सुगम और प्रसिद्ध है, संक्षेप में आत्महितरूप और गागर में सागर समान जैन तत्त्वज्ञान भरा है, सब कोई समझ सके ऐसी स्पष्ट शैली सहित सचित्र ग्रंथ ऐसा सुंदर है कि वर्तमान समाज में सब जगह जिज्ञासुओं को देख-देखकर बाँटनेयोग्य है। पृ० सं० २१०, लागत मूल्य १-५० होने पर भी प्रचारार्थ १) ही है, कमीशन नहीं है।

नियमसार (पद्यानुवाद)

आचार्यदेव श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत नियमसार पर श्री युगलकिशोरजी जैन एम.ए., साहित्यरत्न, कोटा, (राज०) ने सुंदरतम पद्यानुवाद किया है। छोटे साइज में छपा है, मूल्य मात्र)२५ पैसा थोक मंगान पर २५ प्रतिशत कमीशन।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

धर्म क्या, कहाँ और कैसे ?

अमृतचन्द्राचार्य ने कहा—

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनांभवत्यहिंसेति।
तेषमेवोत्पत्तिर्हिं सेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥

रागादि दोषों की उत्पत्ति नहीं होना, सो अहिंसा है और रागादि की उत्पत्ति होना हिंसा है, यही जिनागम का सार है।

इसका मतलब हुआ कि जैनधर्म में राग-द्वेष ही आत्मा की हिंसा है। अतः रागादि अधर्म है और वीतरागता ही धर्म है। अतः सूक्ष्म से सूक्ष्म राग भी आत्मा को छोड़ना पड़ेगा, तभी वह वीतरागी बनेगा। प्रथम श्रद्धा में विपरीत अभिप्राय और सर्वप्रकार के रागादि का सर्वथा त्याग और भूतार्थ का ग्राहण होना चाहिये। श्रद्धान में शुभराग को भला माने-मोक्षमार्ग माने तो मिथ्यादृष्टि ही होता है। यद्यपि ज्ञानी (सम्यग्दृष्टि) जीव को भी अपनी-अपनी भूमिकानुसार राग आता है किंतु उसकी दृष्टि में सभी शुभ (पुण्य) अशुभ (पाप) रूप राग हेय ही है। राग आता इसलिये है कि उतनी चारित्र की कमजोरी है और वह कमजोरी इसलिये है क्योंकि अभी स्वरूप का निर्णय और श्रद्धान करके भी इतनी विशेष स्वरूप की स्थिरता नहीं है जिससे संपूर्ण राग का त्याग कर सके।

अतः यथार्थ में धर्म वीतराग ही है। किंतु कहीं कहीं शुभराग (पुण्य) को रूढ़ि से व्यवहार से धर्म कह दिया है। अज्ञानी जीव को निश्चय और व्यवहार का यथार्थ ज्ञान न होने से उसको वास्तविक धर्म मान लेता है। इसी कारण उसके अनंत संसार का नाश नहीं हो पाता। वास्तविक धर्म का प्रारंभ भी उसे नहीं होता। वह वास्तविक धर्म से अनभिज्ञ ही रहता है। क्योंकि निश्चय और व्यवहार ये दोनों परस्पर विरोधी धर्म हैं। निश्चय तो द्रव्य की स्वतन्त्रता का निरूपण करता है और व्यवहार द्रव्य को पराधीन कहता है। कहा भी है—

स्वाश्रितो निश्चयः, पराश्रित व्यवहारः ॥

इसलिये समस्त व्यवहार को हेय बतलाया है। क्योंकि उसके आश्रय से विकल्प होते हैं और विकल्प सभी त्याज्य हैं। विकल्प के आश्रय से राग होता है, राग आस्रवतत्त्व और संसार है। इसलिये पंडित टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में स्पष्ट किया है—

'निश्चयनय द्वारा जो निरूपण किया हो, उसे तो सत्यार्थ जानकर अंगीकार करना तथा व्यवहारनय द्वारा जो निरूपण किया हो, उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना चाहिये।'

व्यवहार जब निश्चय के साथ होता है, तभी वह व्यवहार कहलाता है। निश्चय के पूर्व तो जो व्यवहार कहा जाता है, वह सब व्यवहाराभास है। जैसे आत्मश्रद्धा या यथार्थ सात तत्त्वों के श्रद्धान को निश्चयसम्यग्दर्शन कहते हैं और सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के श्रद्धान को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं। किंतु निश्चयसम्यग्दर्शन के पूर्व देव-शास्त्र-गुरु के सच्चे श्रद्धानरूप व्यवहारसम्यग्दर्शन होता ही नहीं है। आचार्य उमास्वामी ने कहा है—

केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो 'दर्शनमोहस्य'

केवली भगवान, शास्त्र, मुनिसंघ, धर्म और देवों के अवर्णवाद (निंदा) से दर्शन मोहनीय (मिथ्यात्व) का बंध होता है। अर्थात् मिथ्यात्व अवस्था में जीव देव-शास्त्र-गुरु और धर्म की निंदा अवश्य करता रहता है, तभी उसके निरंतर मिथ्यात्व का बंध होता रहता है। और जब मिथ्यात्व का बंध देव-शास्त्र-गुरु और धर्म की निंदा से होता है तो उस समय देव-शास्त्र-गुरु और धर्म का सच्चा श्रद्धान कैसे हो सकता है? इनकी निंदा भी करे और सच्चा श्रद्धान भी करता रहे, इन दोनों बातों की एक साथ संगति कैसे बैठ सकती है?

भक्ति या निंदा?

यद्यपि मिथ्यादृष्टि जीव भी देव-शास्त्र-गुरु धर्म की पूजा भक्ति करता है किंतु उस समय भी उसकी विपरीत मान्यता के कारण देवादिक की निंदा होती है, इसका स्पष्टीकरण इसप्रकार है—

केवली भगवान हमें कुछ दे देंगे, भगवान ने सीता और अंजन चोर आदि की रक्षा की थी तथा भगवान किसी की पर्याय को अनिश्चितरूप जाने, किसी की सुनिश्चित जानते हैं, भगवान अनियत पर्यायों को अनियतरूप से जानते हैं। अर्थात् उनके ज्ञान में निर्णीत अवस्था प्रतिभासित नहीं होती है। क्योंकि अनियत रूप से जानते हैं, इसका मतलब हुआ कि शायद ऐसी भी पर्याय हो जाये अथवा दूसरा निमित्त मिले तो दूसरीप्रकार भी हो सकती है? इसप्रकार अनियतरूप से जानने का मतलब हुआ कि उनका ज्ञान भी भ्रमात्मक संशयज्ञान है। **यह सब केवली भगवान की निंदा है।** इसीप्रकार शास्त्रों के व्यवहार कथन को यथार्थ कथन मानकर उससे सच्चे धर्म और सच्चे कल्याण मानना अथवा यह कहना कि शास्त्र में भी व्यवहार को धर्म कहा है तो **ऐसी मान्यता शास्त्र की निंदा है।** क्योंकि जिनागम में कहा है कि प्रत्येक वाक्य के

पाँच अर्थ करना चाहिये, तभी तत्त्व निर्णय हो सकता है। वे ५ अर्थ इसप्रकार हैं—**शब्दार्थ, नयार्थ, आगमार्थ, मतार्थ** और **भावार्थ**। मात्र भेष को या उनके बाह्य क्रियाकांड को देखकर उनको सच्चे साधु या गुरु मान लेना, यह गुरु की निंदा है। रागादि या पुण्यादि से सचा धर्म मान लेना, यह **वीतराग धर्म की निंदा है**। देवादि हमारी सहायता कर सकते हैं, किसी का अच्छा-बुरा करते हैं या इनकी पूजा मान्यता से हमारा भला होता है अथवा ये हमारा उपकार कर सकते हैं, यह सब मान्यता **देवों की निंदा है**। क्योंकि जो स्वभाव जिसमें नहीं है, उस स्वभाव का उसमें सद्भाव मानना, यही तो निंदा है।

सम्यग्ज्ञान के बिना निश्चय-व्यवहार कैसे ?

यहाँ पर यह विचार करना है कि सम्यग्दर्शन पूर्व जब देव-शास्त्र-गुरु का सच्चा श्रद्धान होता ही नहीं है तो फिर व्यवहारसम्यग्दर्शन उसके कहाँ से हो गया ? निश्चय के पूर्व व्यवहार होता ही नहीं है। निश्चय के पूर्व जिसे व्यवहार कहा जाता है, वह सब व्यवहाराभास है।

कोई कहे कि पहले जब देव-शास्त्र-गुरु धर्म के पास जायेगा, उनकी पूजा भक्ति करेंगे तभी तो सम्यग्दर्शन होगा। क्या देव-शास्त्र-गुरु और धर्म की शरण के बिना भी सम्यग्दर्शन हो सकता है ? अत: व्यवहार सम्यग्दर्शन कारण है। इसका समाधान इसप्रकार है-यह हम पूर्व में ही सिद्ध कर चुके हैं कि सम्यग्दर्शन से पूर्व देव-शास्त्र-गुरु की सच्ची श्रद्धा हो ही नहीं सकती। तब व्यवहार सम्यग्दर्शन कहाँ से हो जायेगा ? दूसरी बात यह है कि प्रारंभ में जो देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति करेगा, क्या उन सबको सम्यग्दर्शन हो ही जायेगा ?

अनंत बार दिगम्बर मुनि बनकर एवं घोर उपसर्ग परीषह सहन करके भी जब सम्यग्दर्शन नहीं हो पाता, तब कार्यकारण संबंध कैसे रहा ? तथा नरकादि में बिना देव-शास्त्र-गुरु के सत्संग के भी सम्यग्दर्शन हो जाता है। गौतमस्वामी, विद्यानंदि आचार्य या पात्रकेसरी आदि का स्वभाव की तरफ लक्ष्य जाते ही देव-शास्त्र-गुरु का सच्चा श्रद्धान हो गया।

यहाँ यह अर्थ नहीं निकालना चाहिये कि तो फिर देव-शास्त्र-गुरु की मान्यता कोई आवश्यक नहीं है किंतु इसका भाव यह है कि जब सम्यग्दर्शन होगा, तब देव-शास्त्र-गुरु की मान्यतापूर्वक ही होगा। किंतु इस मान्यता को यथार्थ बनाने के लिये सम्यग्दर्शन अत्यन्त आवश्यक है। अन्यथा व्यवहार सम्यग्दर्शन भी नहीं हो सकता है। हम व्यवहाराभास को ही व्यवहार मान लेते हैं, यह हमारी विपरीत मान्यता है। निश्चय के साथ ही व्यवहार-व्यवहार कहलाता है, उससे पूर्व सब व्यवहाराभास है। —क्रमश:

सोनगढ़ (सुवर्णपुरी) समाचार

तारीख ४-१-१९६८ परमोपकारी पूज्य स्वामीजी सुखशांति से विराजमान हैं, प्रवचन में सवेरे समयसार कलशटीका तथा दोपहर को समयसारजी शास्त्र चालू है।

विहार समाचार—

[फागण सुदी दोज सोनगढ़-जिनमंदिर की वर्षगाँठ का उत्सव मनाकर फागण सुदी ३ पूज्य कानजीस्वामी मंगलविहार करेंगे। कार्यक्रम ऐसे है]

लाठी- (कलापी नगर) फागण सुदी ३ शनिवार तारीख २-३-६८

राजकोट - फागण सुदी १४ से वदी १ तारीख १३ से १५ मार्च

वडाल - तारीख १६ मार्च (यहाँ से सिद्धक्षेत्र श्री गिरनारजी तीर्थक्षेत्र की वंदनार्थ तलहटी जिनमंदिर तक।)

पोरबंदर - तारीख १७ से २४ मार्च,

जेतपुर - तारीख २५ से २८

गोंडल- तारीख २९ से तारीख १ अप्रेल

वडिया - चैत्रसुदी ४ से ७ तारीख २ से ५

मोरबी - चैत्र सुदी ८ से ११ तारीख ६ से ९

वांकानेर - चैत्र सुदी १२ से १५ तारीख १० से १३ अप्रेल

चोटीला - तारीख १४ अप्रेल

सुरेन्द्रनगर - तारीख १५ से १८

वढ़वाणशहर - तारीख १९ से २२

जोरावरनगर - तारीख २३ से २५

वींछिया - बदी १४ से वैशाख सुदी ६ तारीख २६ से तारीख ३-५-६८ तक यहाँ वैशाख सुदी २ पूज्य कानजीस्वामी की ७९ वीं जन्म जयंती मनाई जायेगी, बड़ा उत्सव होगा।

उमराला - वैशाख सुदी ७-८ तारीख ४-५ मई

लींबडी- वैशाख सुदी ९ से १४ तारीख ६ से ११ मई

सोनगढ़ - प्रवेश - वैशाख सुदी १५ रविवार तारीख १२-५-६८ बदी १ तारीख १३-५-६८ सोमवार से सोनगढ़ में विद्यार्थीओं का शिक्षणवर्ग प्रारंभ होगा, २० दिन तक चलेगा।

'ज्ञान चेतना'—

के द्वारा ज्ञानी की पहिचान होती है।

ज्ञानचेतना मोक्ष का मार्ग... अज्ञान चेतना संसार का मार्ग

ज्ञानचेतना द्वारा ज्ञानी केवलज्ञान को निमंत्रित करता है

(समयसार कलश ३२४ पर ज्ञानचेतना का स्वरूप समझानेवाला विशेष प्रवचन)

ज्ञानचेतना अर्थात् शुद्धात्मा का अनुभव करनेवाली चेतना, यह चेतना मोक्षमार्ग है। इस ज्ञानचेतना का संबंध शास्त्रों के अध्ययन के साथ नहीं। ज्ञानचेतना तो अंतर्मुख होकर आत्मा के साक्षात्कार का कार्य करती है—अल्प अथवा अधिक ज्ञान के साथ संबंध नहीं, परंतु ज्ञानानंद -स्वभाव सन्मुख होने से ज्ञानचेतना प्रगट होती है; उस ज्ञानचेतना में आत्मा अत्यंत शुद्धता सहित प्रकाशित हो रहा है। ऐसी ज्ञानचेतना चौथे गुणस्थान से प्रारंभ होती है। ज्ञानचेतना, यह कारण और केवलज्ञान उसका कार्य। ज्ञानचेतना का कार्य राग नहीं, और ज्ञानचेतना का कार्य बाह्य जानकारी नहीं; अंतर्मुख होकर शुद्धात्मा का संचेतन-अनुभव, वह ज्ञानचेतना का कार्य है। ऐसी ज्ञानचेतना को धर्मी ही जानता है। धर्म का, संवर का, मोक्षमार्ग का प्रारंभ इस ज्ञानचेतना से होता है।

ज्ञानचेतना आत्मिक रस से परिपूर्ण है; और समस्त विषयों से अत्यंत उदासीन है। जीव के शुद्ध स्वरूप का अनुभव करनेवाली ज्ञानचेतना द्वारा शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति होती है, और अशुद्धता के अनुभव द्वारा अशुद्धता की प्राप्ति होती है, इसप्रकार कारण के अनुसार कार्य होता है। अर्थात् शुद्ध कारण के सेवन से शुद्ध कार्य और अशुद्ध कारण के सेवन से अशुद्धता होती है। राग तो अशुद्धता है, उस अशुद्धता के सेवन से कभी शुद्धता हो जाये—ऐसा नहीं हो सकता। ज्ञानचेतना द्वारा अंतर में शुद्ध स्वभाव का अनुभव करने से केवलज्ञानरूपे शुद्धता प्रगट होती है। बस, अंतर में स्वभावसन्मुखता का अनुभव ही ज्ञानचेतना का कार्य है।

उपदेश देकर अन्य जीवों को तारना, यह ज्ञानचेतना का कार्य नहीं। अंतर विकल्पों का उत्पन्न होना, यह ज्ञानचेतना का कार्य नहीं, वहाँ वाणी की तो बात ही कहाँ रही? विकल्प अथवा वाणी को जो ज्ञानचेतना का कार्य मानता है, उस जीव को ज्ञानचेतना प्रगट नहीं हुई है। ज्ञानचेतना क्या है, इसकी उसे खबर ही नहीं। वह तो राग-द्वेष के परिणामों में ही तन्मय होकर

अज्ञानचेतना का सेवन करता है, और उस अज्ञानचेतना में संसार की उत्पत्ति होती है।

इसप्रकार ज्ञानचेतना, वह मोक्षमार्ग और अज्ञानचेतना, वह संसार का मार्ग। जिसमें ज्ञान नहीं, उसके सेवन से मोक्षमार्ग कहाँ से हो? शुभ विकल्प, वह ज्ञान नहीं, अर्थात् शुभ विकल्पों के सेवन से मोक्षमार्ग नहीं होता; शुभ विकल्पों को जो मोक्षमार्ग मानता है, वह अज्ञानचेतना का सेवन करता है। और उस अज्ञानचेतना का फल हर्ष-शोक का वेदन है अर्थात् दु:ख का वेदन है, और वह ज्ञान की शुद्धता को रोकती है तथा आठों कर्मों का बंध करती है। इसके विपरीत ज्ञानचेतना में ही आनंद का वेदन है, वह शुद्धता प्रगट करती है और आठों कर्मों के बंधन को तोड़ती है।

ज्ञानचेतना द्वारा ज्ञानी ने यह जाना है कि मैं शुद्धचेतनास्वरूप जीव हूँ; सर्व कर्मों की उपाधि रहित अपना शुद्धस्वरूप मुझे स्वानुभवप्रत्यक्ष द्वारा आस्वादन में आता है। ऐसी ज्ञानचेतना द्वारा ही ज्ञानी की पहिचान होती है।

ज्ञानचेतना द्वारा ज्ञानी अपने शुद्ध आत्मा का ही संचेतन अनुभवन करता है; ज्ञानचेतना द्वारा ज्ञानी कहीं राग का संचेतन नहीं करता अर्थात् राग का स्व-रूप से अनुभव नहीं करता। स्वतत्त्व को पकड़कर उसके अनुभव में एकाग्र होना, वह ज्ञानचेतना का कार्य है। शुद्धचारित्र का भी इसी में समावेश हो जाता है। ऐसी ज्ञानचेतना, वह मोक्षमार्ग है, केवलज्ञान के बुलाने वाली है। अहा! ज्ञानचेतना द्वारा ज्ञानी केवलज्ञान को बुलाता है। विकल्प द्वारा बुलाने से केवलज्ञान किसी प्रकार उत्तर दे, ऐसा नहीं है। विकल्प तो अशुद्धता है, उसके द्वारा केवलज्ञान किसप्रकार आ सकता है? ज्ञानचेतना, वह केवलज्ञान की जाति की ही है, उसके द्वारा अंतर्मुख होकर बुलाने से तुरंत ही केवलज्ञान आ जाता है। ऐसी ज्ञानचेतना द्वारा ज्ञानी केवलज्ञान को बुलाता है।●

प्रश्नोत्तर

मध्यमवर्ग शिक्षण शिविर १९६७ सोनगढ़

प्रश्न १—एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी वास्तव में करे ऐसा माना जाये तो कौन से तत्त्व की भूल है ?

उत्तर—प्रथम तो दो द्रव्यों की एकत्वबुद्धिरूप बड़ी भूल है। (१) जैसे 'जीव ने कर्म बाँधे' इसमें पुद्गल ने ही उपादानरूप से परिणमन को करके द्रव्यकर्मरूप अवस्था को किया, ऐसा न मानकर पुद्गलद्रव्य के उपादान की स्वतंत्रता को न माना, यह अजीवतत्त्व संबंधी भूल है। जेसे अन्यमति किसी ईश्वर को जगत का निमित्त होकर कर्ता मानता है तो वह श्रद्धा वस्तुस्वरूप से पूर्णतया विपरीत है। उसीप्रकार जैन नाम धारण करके एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य की पर्याय का निमित्तरूप से वास्तव में कर्ता माने तो वह पूर्णतया विपरीत ही है। जैसे (२) 'जड़ कर्म के कारण जीव को रागादि हुए' इसमें रागादि तो जीव का ही अशुद्ध उपादान है, (औदयिकभाव को स्वतत्त्व कहा है) उसके बदले कर्मों ने रागादि कराया, जड़ कर्म ही वास्तव कारण है, ऐसा माने तो जीव का उपादान को स्वतंत्र नहीं माना, यह जीवतत्त्व की भूल है। दृष्टांत —जीवादि इसलोक के छह द्रव्य हैं, अपने से नित्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सहित हैं; रहित नहीं हैं (सिद्धांत—)छह द्रव्य और उनके गुण पर्याय (द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव) स्व से ही है, पर से कभी नहीं है; इसलिये प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने शुद्ध या अशुद्ध उपादानरूप अपने ही परिणमन स्वभाव से निरंतर परिणमित हो रहे हैं। शुद्धता में और अशुद्धदशा में छहों कारक (कारण) स्वतंत्र हैं, परतंत्र मानने पर भी परतंत्र नहीं हैं। देखो पंचास्तिकाय गाथा ६२।

प्रश्न २—जीव में शुभाशुभ विकार सर्वथा सहेतुक या अहेतुक ही है, ऐसा माना जाये तो कौन तत्त्व की भूल है ?

उत्तर—विकार सर्वथा अहेतुक ही है, निश्चयनय से यह कथन ठीक है किंतु व्यवहार से भी अहेतुक माना जाय तो उसमें जीवतत्त्व की भूल है।

हेतु—जो रागादिक की उत्पत्ति में परद्रव्य को ही कारण मानते हैं, अपना विपरीत पुरुषार्थरूप अशुद्ध उपादान को नहीं मानते, वे मोह नदी को पार नहीं कर सकते हैं।

दृष्टांत सांख्यमति आदि—सिद्धांत-उनके मोक्षदशा नहीं होती।

युक्ति—युक्ति में नय-प्रमाण आ जाते हैं, उनके द्वारा सच्चा ज्ञान होता है।

१—निश्चय से अशुद्धनिश्चयनय से विकाररूप परिणमन करने में स्वयं का ही अपराध है, इसलिये उस उल्टे पुरुषार्थ का कार्य कथंचित निर्हेतुक हैं।

२—व्यवहारनय से अशुद्धता उत्पन्न करने में कर्मोदय का निमित्त है, कारण कि उसकी ओर जीव झुकाव करते हैं तो वह निमित्तकारण कहा जाता है, इस अपेक्षा विकार सहेतुक है। दोनों नयों के विषय का एक साथ ज्ञान करना प्रमाणज्ञान है।

सारांश—प्रथम निर्णय करना कि सत् अहेतुक है अपना अस्तित्व अपेक्षा, अतः विभाव, अशुद्धता स्वयं अपने अशुद्ध उपादान से अज्ञानी जीव करता है, उसे अशुद्ध उपादान बताना, वह निर्हेतुक है और पश्चात् निमित्त का संग बताने के लिये सहेतुक कहना व्यवहार है।

प्रयोजन—प्रथम ही पराश्रय की श्रद्धा छोड़कर स्वाश्रय करे तो यह जानना प्रमाण है।

प्रश्न ३—सर्वथा अकालमरण मानने से कौन तत्त्व की भूल है ?

उत्तर—मोक्षतत्त्व की भूल है और अजीवतत्त्व की भूल है, हेतु-आयु पूर्ण होने पर अनेक उपाय करने पर भी, अनेक सहाई होने पर भी मरण तो अवश्य होता है। एक समय भी ज्यादा जी नहीं सकता। और जहाँ तक आयु है, पूर्ण नहीं हुआ है, वहाँ तक अनेक कारण मिले तो भी मरण होता ही नहीं। जीवित-मरण तो अपने-अपने आयु कर्म के कारण होता है (मारने बचाने का राग जीव अपने में कर सकते हैं)।

(समयसार गाथा २४८ से २५२)

इसप्रकार सर्वज्ञ भगवान ने देखा है, इस बात को जो नहीं मानता तो उनकी मोक्षतत्त्व की भूल है और जीव के साथ एकक्षेत्रावगाही खास संबंध सहित रहनेवाली कर्म और उनके काल की मर्यादा को आयुष्य कर्म कहते हैं। अकालमरण के पक्ष्यकार ने तो आयु की वास्तविक स्थिति मानी नहीं, इसमें जीव-अजीवतत्त्व की भूल है।

प्रश्न ४—अकालमरण का प्रश्न आता है, वह किसप्रकार है ?

उत्तर—लोगों के व्यवहार में बाह्य निमित्त की अपेक्षा से वह कथन है-वह लोगों की दृष्टि में सत्यार्थ है किंतु सच्चा कथन तो शरीर के साथ जीव का संबंध बने रहने के काल की मर्यादा को ही आयुष्य कहा है। उसमें निमित्तकारण आयुकर्म है।

सारांश—आयुकर्म को सर्वज्ञ के ज्ञान के अनुसार देखा जाये या संसारी ज्ञानी का ज्ञान से देखा जाये, उसमें कोई इन्द्र, नरेन्द्र, जिनेन्द्र भी फेरफार कम-बढ़, आगे-पीछे कर सके—ऐसा नहीं है, रागी जीव मोहवश झूठे नाम पाड़ता है किंतु वस्तुस्वभाव जैसा है, वैसा ही है। इसप्रकार सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वार्थ को, यथार्थता को, स्व-सन्मुखता सहित माने तो अपने में पुरुषार्थ आदि और सम्यक्नियति का नियम जानना सत्यार्थ है।●

धर्म प्रेमी मंत्रीजी का वियोग

भिण्ड (म०प्र०) जैन समाज भिण्ड के कर्मठ जनसेवी एवं धर्म प्रेमी और पूज्य कानजीस्वामी द्वारा समीचीन जैन धर्म के श्रद्धानी होने से बारंबार सोनगढ़ में महीनों तक सत् संगति के लाभ लेते थे—मंत्रीजी रामस्वरूप जैन का देहान्त २५ अक्टूबर १९६७ को हो गया। शोक समाचार सुनकर भिण्ड नगर का समस्त जैन समाज शोकाकुल हो गया। दूसरे दिन एक विशाल शोक सभा का आयोजन कर समाज ने आपको भावपूर्ण श्रद्धांजलि दी। आप दिगम्बर जैन भदावर-महासभा के ४० वर्ष तक मंत्री रहे। आपने सोनगढ़ में परमोपकारी पूज्य कानजीस्वामी द्वारा सच्चा दिगम्बर धर्म का स्वरूप समझकर भिण्ड में मुमुक्षु मंडल की स्थापना भी की। 'हीरा मुख से ना कहे लाख हमारा मोल' आपमें यह विशेषता थी।

शिक्षा के क्षेत्र में मंत्रीजी का योगदान बड़ा ही महत्त्वपूर्ण एवं सराहनीय रहा। साधारण पाठशाला को डिग्री कालेज तक उठाने में मंत्रीजी का अथक प्रयत्न कभी भी नहीं भुलाया जा सकेगा। जो कि यह जैन डिग्री कालेज मंत्रीजी के लिये जीता जागता स्मारक रहेगा, निर्धन-असहाय छात्रों से मंत्रीजी को विशेष रुचि थी। आसपास गाँवों के भी कई युवक अपना जीवन ऊपर उठाने में आपको ही कारण समझते हैं। आप भिण्ड नगर का राज दरबारी, ओनरेरी मजिस्टेट, नगर पालिका के सदस्य थे जो जनता का आपके ऊपर सच्चा प्रेम बात रहा है। अतः आपका सच्चा प्रकाश सदा ही हमारे तथा समाज के सामने बना रहेगा।

एल. एन. जैन
महावीर रेडीमेड स्टोर्स, भिण्ड

'जयपुर (खानिया) तत्त्वचर्चा'

पृष्ठ संख्या - दोनों भाग की - १५०० मूल्य - १६) सोलह रुपये

सरदारशहर निवासी सद्धर्मप्रेमी भाई श्री दीपचंदजी सेठिया तथा उनके परिवार आदि की ओर से 'जयपुर तत्त्वचर्चा' (भाग १ और २) बिना मूल्य प्रार्थना-पत्र मिलने पर भेंटस्वरूप भारत भर के श्री दिगम्बर जैन मंदिर एवं श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल अथवा दिगम्बर जैन संस्थाओं को ही निम्नोक्त पते पर पत्र लिखने से मिल सकेंगे। पोस्टेज-पेकिंग-व्यय वी.पी. २)८० दो रुपये अस्सी पैसे की जायेगी। प्रत्येक संस्था को मात्र एक सेट (भाग १-२) दिया जायेगा। प्रतियाँ जब तक स्टॉक में होगी, तब तक दी जायेंगी।

पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

खास सूचना

सर्व मुमुक्षु मंडल के भाईयों और बहिनों, मुमुक्षु मंडल संघ और मंदिर के व्यवस्थापकों से निवेदन है कि श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ की ओर से निम्नलिखित गुजराती एवं हिन्दी पुस्तकों में प्रचार हेतु कमीशन देने का निश्चय किया गया है। यह योजना मिती माघ सुदी दूज दिनांक ३१-१-६८ तक के लिये ही है। अत: इस योजना से लाभ उठावें। ये पुस्तकें खरीदने योग्य व अभ्यास करने योग्य हैं।

कमीशन योजना गुजराती एवं हिन्दी पुस्तकों पर

(१)	१) रुपये से २५ रुपये तक की पुस्तकों पर	५ प्रतिशत
(२)	२६) रुपये से ५० रुपये तक की पुस्तकों पर	७ प्रतिशत
(३)	५१) रुपये से १०० रुपये तक की पुस्तकों पर	१० प्रतिशत
(४)	१०१) रुपये से २५० रुपये तक की पुस्तकों पर	१२ प्रतिशत
(५)	२५१) रुपये से और उससे ज्यादा कीमत पर	१५ प्रतिशत

पत्र व्यवहार का पता—

व्यवस्थापक-पुस्तक बिक्री विभाग

दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, पोस्ट सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

गुजराती पुस्तकें

आत्मप्रसिद्धि	३)७५
आत्मसिद्धि शास्त्र (सार्थ)	)३१
आत्मसिद्धि गुटका	)६०
आत्मसिद्धि गाथा	)१३
अपूर्व अवसर	)५०
अनुभवप्रकाश	१)
आलोचना	)१३
अष्ट प्रवचन	१)
भजनमाला	१)
चिद्विलास	)७५
लघु जीन पूजा पाठ	)१३
मंगल तीर्थयात्रा	६)
मोक्षमार्गप्रकाशक	३)
मोक्षशास्त्र	४)
मोक्ष की किरणें-२	१)६३
मुक्ति का मार्ग	)७५
नियमसार प्रवचन-२	१)६३
योगसार दोहा	)१५
पंचास्तिकाय संग्रह	३)
पंचास्तिकाय हरिगीत	)३१
प्रवचनसार हरिगीत	)३१
पंच कल्याणक प्रवचन	२)२५
जिनेन्द्र पुष्प पल्लव	)५०
सम्यग्दर्शन-२	)५०
जैन सिद्धांत प्रवेशिका	)१६
समयसार प्रवचन, भाग १	४)
समयसार प्रवचन, भाग ४	३)
समयसार पद्यानुवाद	)३१
समयसार गुटका	)७५
समवशरण स्तुति	)५०
स्तवनमाला	१)१२
स्तवनावली	)७५
सामायिकपाठ सार्थ	)३०
पुरुषार्थसिद्धि	२)
समाधितंत्र हरिगीत	)१५
सम्यग्ज्ञान दीपिका	१)५०

हिन्दी पुस्तकें

प्रवचनसार	४)
अनुभवप्रकाश	)३५
समयसार प्रवचन, भाग ४	४)
समयसार ग्रंथ	५)
समयसार पद्यानुवाद	)२५
छहढाला गाथा	)१५
प्रश्नोत्तरमाला, भाग ३	)५०
द्रव्यसंग्रह	)८५
समयसार कलश टीका	२)७५
मुक्ति का मार्ग	)५०
पंचास्तिकाय संग्रह	३)५०
नियमसार	४)
अष्ट प्रवचन	१)१२
सन्मति संदेश	)५०

नया प्रकाशन

अपूर्व अवसर

अमर काव्य पर प्रवचन तथा कुन्दकुन्दाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा तथा समाधिमरण स्वरूपादि संग्रह ग्रंथ-सेठी ग्रंथमाला द्वारा तीसरी आवृत्ति, पृष्ठ संख्या १८०

यह ग्रंथ सातिशय रोचक, आत्मिक उत्साहमय प्रबल पराक्रम और आध्यात्मिक रसास्वाद के रसिकजनों के लिये बारंबार पढ़ने योग्य है, उनकी माँग हमेशा चालू है इसलिये तीसरी आवृत्ति है। इस बार पंडितप्रवर श्री टोडरमलजी के सुपुत्र पंडित श्री गुमानीरामजी कृत बृ० समाधिमरण स्वरूप तथा पंडित जयचंदजी कृत बारह भावना बढ़ायी है। मूल्य १)५०, थोक मंगाने पर २५ प्रतिशत कमीशन।

चिद्विलास (आधुनिक भाषा में)

सेठी ग्रंथमाला से प्रकाशित दूसरी आवृत्ति। पृ० सं० १९६, मूल्य १-५०, थोक मंगाने पर २५ प्रतिशत कमीशन, पोस्टेज अलग। अनुभवप्रकाश, आत्मावलोकन, ज्ञानदर्पण, अध्यात्म पंचसंग्रह, भाव दीपिकादि ग्रंथों के कर्ता, अध्यात्मतत्त्व द्रव्यानुयोग के विशेषज्ञ अधिकारी, अनुभवी विद्वान श्री दीपचंदजी शाह काशलीवाल कृत यह 'चिद्विलास' ग्रंथ जो प्रवचनसार आदि परमागम के संक्षेप साररूप है-अनेक शास्त्रों के गहन अध्ययन चिंतन के फलरूप सुंदर, रोचक और प्रौढ़ रचना है। हरेक स्वाध्याय प्रेमी को बारंबार पढ़ने योग्य है।

पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

सूचना—मोक्षमार्गप्रकाशक की सोनगढ़ की सब प्रतियाँ बिक चुकी हैं, किंतु जयपुर में १५० प्रति हैं एक साथ १० प्रति से ज्यादा नहीं मिलेगी, ज्यादा चाहिये तो प्रथम से अपना आर्डर बुक करा देवें। अष्टपाहुड़ भी जयपुर से छपनेवाला है, आपको जितनी प्रति चाहिये इसका भी जयपुर लिखकर आर्डर बुक करा देवें।

पता—टोडरमल स्मारक भवन
ठि० ए-४, गांधीनगर रोड, बापूनगर, पोस्ट जयपुर (राजस्थान)

जयपुर (खानिया) तत्त्वचर्चा, भाग १-२ विस्तृत ऐतिहासिक चर्चा

बड़े आकार की दो पुस्तक, पृष्ठ संख्या ८५०, मूल्य १६) पोस्टेज अलग। प्रकाशक टोडरमलजी स्मारक ग्रंथमाला। उसमें आचार्य श्री शिवसागर मुनि महाराज के सामने दो पक्ष के विद्वानों द्वारा जो लिखित चर्चा हुई थी, वही इस ग्रंथ में छपवा दी है। मध्यस्थ होकर जिज्ञासुगण स्वतंत्रतया निर्णय करें। यह पुस्तकें १-सोनगढ़ भी मिलेंगी।

२- पता - टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, गांधीनगर रोड, बापूनगर, पोस्ट जयपुर (राजस्थान)।

सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचन, जो सर्वज्ञ वीतराग कथित मोक्षमार्ग (सुख का उपाय) समझने के लिये परमोपकारी हैं, उनका अपूर्व यथार्थ लाभ लेने के लिये निम्नोक्त ग्रंथों का —

अवश्य स्वाध्याय करें

श्री समयसार शास्त्र	५-०
अष्टपाहुड़ शास्त्र	प्रेस में
श्री प्रवचनसार शास्त्र	४-०
श्री नियमसार शास्त्र	४-०
श्री पंचास्तिकाय संग्रह शास्त्र	३-५०
समयसार प्रवचन, भाग १-२-३	अप्राप्य
समयसार प्रवचन भाग ४	४-०
[कर्ताकर्म अधिकार, पृष्ठ ५६३]	
आत्मप्रसिद्धि	अप्राप्य
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका (तृ०), पृष्ठ-९००	५-०
स्वयंभू स्तोत्र	०-५०
मुक्ति का मार्ग	०-५०
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र०	१-०
'' ''द्वितीय भाग	२-०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला, भाग १,२,३ प्र.	०-६०
योगसार-निमित्त उपादान दोहा, बड़ा टा.	०-१२
श्री अनुभवप्रकाश (दीपचंद्रजी कृत)	०-३५
श्री पंचमेरु पूजा संग्रह आदि	१-०
बृ.दसलक्षण धर्मव्रत उद्यापन पूजा	०-७५
देशव्रत उद्योतन प्रवचन	छपेगा
अष्टप्रवचन (ज्ञानसमुच्चयसार)	१-५०
मोक्षमार्गप्रकाशक (श्री टोडरमलजी कृत) जिसमें पीछे से किसी के द्वारा बढ़ाये कथन शामिल नहीं किये गये हैं, मूल में जो कथन है वही आधुनिक भाषा में	२-०
समयसार कलश टीका (पं. राजमल्लजी पांडे कृत) आधुनिक भाषा में	२-७५
जैन बाल पोथी	०-२५
छहढाला बड़ा टाईप (मूल)	०-१५
छहढाला (नई सुबोध टी.ब.) सचित्र	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	अप्राप्य
सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	अप्राप्य
जैन तीर्थयात्रा पाठ संग्रह	अप्राप्य
अपूर्व अवसर अमर काव्य पर प्रवचन प्रवचन और श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा व लघु सामा.	प्रेस में
भेदविज्ञानसार	अप्राप्य
अध्यात्मपाठ संग्रह	४-०
वैराग्य पाठ संग्रह	१-०
निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	०-१५
स्तोत्रत्रयी	०-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-२५
'आत्मधर्म मासिक' इस एक वर्ष के लिये	२-०
'' पुरानी फाईलें सजिल्द	३-७५
शासन प्रभाव तथा स्वामीजी की जीवनी	०-१२
जैनतत्त्व मीमांसा	१-०
बृ०मंगल तीर्थयात्रा सचित्र गुजराती में १८) ग्रन्थ का मात्र	६-०
अभिनंदन ग्रंथ	७-०

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)

प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।